१, ९-१, १४.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे केवलणाणावरणीयं

ओहि-मणपज्जवणाणाणं को विसेसो ? उच्चदे-मणपज्जवणाणं विसिटठसंजमपच्चयं, ओहिणाणं पुण भवपच्चयं गुणपच्चयं च । मणपज्जवणाणं मदिपुव्वं चेव, ओहिणाणं पुण ओहिदंसणपुव्वं । एसो तेसिं विसेसो (१ अथानयोरवधिमन:पर्ययो: कुतो विशेष इत्यत आह-स सि. १, २५. विशुद्विक्षेत्रस्वामि-यिषयेभ्योऽवधिमन:पर्यययो:। त. सू. १.२५.)। मणपज्जवणाणस्स आवरणं मणपज्जवणाणा-वरणीयं।

केवलमसहायमिंदियालोयणिरवेक्खं

तिकालगोयराणंतपज्जायसमवेदाणंतवत्थुपरिच्छेदयमसंकुडियमसवत्तं केवलगाणं (२ बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्ग केवन्ते सेवन्ते तत्केवल। असहायमिति वा। स.सि. १, ९ बाह्याभ्यन्तरक्रियाविशेषात् यदर्थ केवन्ते तत्केवलम।अव्युत्पन्नो वाऽसहायार्थ: केवलशब्द:। त.रा.वा. १, ९.

क्षायोपशमिकज्ञानासहायं केवलं मतम्। यदर्थमर्थिनो मार्ग केवन्ते वा तदिष्यते।। त. श्लो. वा. १, ९, ८. संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं। लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं।। गो.जी. ४५९. केवल- मेगं सुध्दं सगलमसाहारणं अणंतं च। वि. आ. भा. ८४)। णट्ठाणुप्पण्णअत्थाणं कधं तदो परिच्छेदो ? ण, केवलत्तादो

बज्झथावेक्खाए (३ वज्झत्थाएक्खाए ता. १।) विणा तदुप्पत्तीए विरोहाभावा। ण तस्स विपज्जयणाणत्तं

शंका -- अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान इन दोनों ज्ञानोंमें क्या भेद है ?

समाधान --मन:पर्ययज्ञान विशिष्ट संयमके निमित्तिसे उत्पन्न होता है, किन्तु अवधिज्ञान भवके निमित्तसे और गुण अर्थातायोपशमके निमित्तसे उत्पन्न होता है। मन:पर्यय - ज्ञान तो मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, किन्तु अवधिज्ञान अवधिदर्शनपूर्वक होता है। यह उन दोनों ज्ञानोमें भेद है।

इस प्रकारके मन:पर्ययज्ञानका आवरण करनेवाला कर्म मन:पर्ययज्ञानावरणीय कहलाता है।

केवल असहायको कहते है। जो ज्ञान असहाय अर्थात इन्द्रिय और आलोककी अपेक्षा रहित है, त्रिकालगोचर है, अनन्त पर्यायोंसे समवेत अनन्त वस्तुओंका जाननेवाला है, असंकुटित अर्थात सर्वव्यापक है, और असपत्न अर्थात प्रतिपक्षी रहित है उसे केवलज्ञान कहते है।

शंका -- जो पदार्थ नष्ट हो चुकेहै, और जो पदार्थ अभी उत्पन्न नही हुए है, उनका केवलज्ञानसे कैसे ज्ञान हो सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, केवलज्ञानके सहाय-निरपेक्ष होनेसे बाह्य पदार्थोकी अपेक्षाके विना उनके, अर्थात नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थोके, ज्ञानको उत्पत्तिमें कोई विरोध नहीं है। और केवलज्ञानके
विपर्यज्ञानपनेका भी प्रसंग नहीं आता है, क्योंकि,

छक्खंडागमे जीवट्ठाणं (१, ९-१, १४.

पसज्जदे, जहासरुवेण परिच्छित्तीदो। ण गद्दहसिंगेण विउचारो, तस्स अच्चंताभावरुवत्तादो। एदस्स आवरणं केवलणाणावरणीयं। केवलिम्हि (१ 'केवलम्हि' ता. १। २ विज्जओ ता. १।) किमेक्कं चेव णाणं, आहो पंच वि अत्थि त्ति। ण पढमपक्खो, आवरणिज्जाभावादो चदुण्हमावरणाणमभावप्पसंगादो। ण विइज्जओ पक्खो (२ चिज्जपक्ख ता. १।) वि, पच्चक्खापच्चक्ख - परिमियपरिमिय - केवलाकेवल - कमाकमणाणाणमेयत्थ अक्कमेण संभवविरोहा
(३ केवलस्यासहायत्वादितरेषां च क्षयोपशमनिमित्तत्वाघोगपद्याभाव:। त. रा. वा. १, ३०, ७.) इदि ? एत्य परिहारो उच्चदे - ण विइज्ज - पक्खउत्तदोससंभवो, अणब्भुवगमादो। ण पढमपक्खउत्तदोससंभवो वि, आवरण वसेण समुप्पण्णमदिणाणादिचदुण्हमावरणिज्जाणमुवलंभादो। ण खीणावरणिज्जे तेसिं

वह यथार्थस्वरुपसे पदार्थोको जानता है। और न गधेके सींगके साथ व्याभिचार दोष आता है, क्योंकि, वह अत्यन्त अभावरुप है।

विशेषार्थ - यहां उक्त शंका - समाधानमें केवलज्ञानके नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके जाननेकी शक्तिके सम्बन्धमें तीन बातोंका स्पष्टीकरण किया गया है - चूंकि, केवल ज्ञान सहाय - निरपेक्ष है, अत: वह वस्तुकी वर्तमान पर्यायके समान अतीत और अनागत पर्यायोकी अपेक्षा नहीं

रखता। वह स्वभावत: यथार्थ ज्ञायक है, इसलिए उसमे विपर्ययत्व आनेकी संभवना नहीं है। तथा, नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंका यघपि वर्तमानमें सद्‌भाव नहीं है। तथापि उनका अत्यन्ताभाव नहीं है, द्रव्यरुपसे प्रागभाव-प्रध्वंसाभावरुपसे वे हैं और इसलिए अत्यन्तभाववाले गधेके सींगके उनका व्याभिचार नही आता है।

इस केवलज्ञानके आवरण करनेवाले कर्मकी केवलज्ञानावरणीय कहते है।

शंका -- केवली भगवान्‌में क्या एक ही ज्ञान होता है, अथवा पांचों ही ज्ञान होते है। प्रथम पक्ष तो माना नहीं जा सकता, क्योंकि आवरणीय अर्थात आवरण करने योग्य ज्ञानोंके अभाव होनेसे मतिज्ञानावरणादि चारों आवरण कर्मोके अभावका प्रसंग आता है। न दूसरा पक्ष भी माना जा सकता है, क्योंकि, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, परिमित-अपरिमित, असहाय-सहाय और क्रम-अक्रमरुप पांचों ज्ञानोंका एक आत्मामें एक साथ रहनेका विरोध है ?

समाधान - यहां पर उक्त शंकाका परिहार कहते है - दूसरे पक्षमें कहा गया दोष तो संभव नहीं है, क्योंकि, वैसा, अर्थात पांचों ज्ञानोंका एक साथ रहना, माना नही गया है। और न प्रथम पक्षमें कहा गया दोष भी संभव है, क्योंकि, आवरणके वशसे उत्पन्न होनेवाले मतिज्ञानादि चारों आवरणीय ज्ञान पाये जाते है। क्षीणावरणीय केवली

१, ९-१, १६.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे दंसणावरणीय-उत्तरपयडीयो

संभवो आवरणणिबंधणाणं तदभावे संभवविरोहादो (१ XXX (केवलज्ञानस्थ) क्षायिकत्वात संक्षीणसकलज्ञानावरणे भगवत्यर्हति कथं क्षयोपशमिकानां ज्ञानानां संभव:। न हि परिप्राप्तसर्वशुध्दौ प्रदेशाशुध्दिरस्ति त.रा.वा. १, ३०, ८.)।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ ।।१५।।

एदं दव्वट्ठियणयमस्सिदूण ट्ठिदं सुतं संगहिदासेसविसेसत्तादो। कधं संगहादो विसेसो णव्वदे? ण, बीजबुध्दीणं तदो तदवगमे विरोहाभावा ।

पज्जवट्ठियणययाणुग्ग हटठभुत्तरसुत्तं भणदि --

णिद्‌दाणिद्‌दा पयलापयला थीणगिध्दी णिददा पयला य, चक्खु- दंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवल-दंसणावरणीय चेदि (२ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृध्दयश्च । त.सू. ८,७) ।।१६।।

तत्थ णिद्दाणिद्दाए तिव्वोदएण रुक्खग्गे विसमभूमीए जत्थ वा तत्थ वा देसे घोरंतो अघोरंतो वा णिब्भरं सुवदि (३ मदखेदक्लमविनोदार्थ स्वापो निद्रा । तस्वा उपयुपरि वृत्तिर्निद्रानिद्रा। स.सि. ८, ७ ; त.रा.वा. ८, ७ त. श्लो. वा. ८, ७. ; णिद्दाणिददुयेण य ण दिट्ठिमुग्घादिदुं सक्को। गो. क. २३. णिद्दाणिद्दा य दुक्ख-पडिबोहा । क. ग्रं. १, ११.)। पयलापयलाए तिव्वोदएण वइट्ठओ वा उब्भवो

भगवानमें उनका होना संभव नही है, क्योंकि, आवरणके निमित्तसे होने वाले ज्ञानोंका आवरणोंके अभाव होनेपर होना विरुध्द है।

दर्शनावरणीय कर्मकी नौ प्रकृतियां है।। १५।।

यह सूत्र द्रव्यार्थिकनयका आश्रय लेकर स्थित है, क्योंकि, उसमें समस्त विशेषोंका संग्रह किया गया है।

शंका - संग्रहनयसे विशेष कैसे जाना जाता है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, बीज-बुध्दिवाले शिष्योंके संग्रहनयसे विशेषका ज्ञान होनेमें कोई विरोध नही है।

अब पर्यायार्थिक नयवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते है -

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृध्दि, निद्रा और प्रचला; तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय, ये नौ दर्शनावरणीय कर्मकी उत्तर-प्रकृतिया हैं।।१६।।

उनमें निद्रानिद्रा प्रकृतिके तीव्र उदयसे जीव वृक्षके शिखरपर, विषम भूमिपर, अथवा जिस किसी प्रदेशपर घुरघुराता हुआ या नहीं घुरघुराता हुआ निर्भर अर्थात गाढ निद्रामें सोता है। प्रचलाप्रचला प्रकृतिके तीव्र उदयसे बैठा या खडा हुआ मुंहसे

वा मुहेण गलमाणलालो पुणो पुणो कंप्रमाणसरीर-सिरो णिब्भरं सुवदि (१ या क्रियाऽत्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका। सैव पुन: पुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचला। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ७ पयलापयलुदयेण य वहेदि

लाला चलंति अंगाई। गो. क. २४. पयलापयला उ चंकमओ।। क ग्रं. १, ११.)। थीणगिध्दीए तिव्वोदएण उठ्ठाविदो वि पुणो सोवदि, सुत्तो वि कम्मं कुणदि, सुत्तो वि झंक्खइ, दंते कडकडावेइ (२ स्वप्नेऽपि यया वीर्यविशेषाविर्भाव: सा स्त्यानगृध्दि:। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो. वा. ८, ७ थीणुदयेगुट्ठविदे सोवदि कम्मं जप्पदि य।। गो.क. २३ दिणचिंतिअत्थकरणी थीणध्दी अध्दचक्किअध्दबला। क. ग्रं. १, १२.)। णिद्दाए तिव्वोदएण अप्पकालं सुवइ, उट्ठाविज्जंतो लहुं उट्ठेदि, अप्पसद्देण वि चेअइ (३ णिंद्ददुये गच्छंतो ठाइ पुणो वइसइ पडेइ।। गो.क. २४. सुहपडिबोहा निद्दा। क. ग्रं. १, ११.)। पयलाए तिव्वोदएण वालुवाए भरियाइं व लोयणाइं होंति, गरुवभारोट्ठव्वं व सीसं होदि, पुणो पुणो लोयणाइं उम्मिल्ल-णिमिल्लणं कुणंति, (४ पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तो वि। ईसं ईसं जाणदि मुहूं मुहूं सोवदे मंदं।। गो. क. २५. पयला ठिओववविट्ठस्स क. ग्रं. १, ११.) णिद्दाभरेण पडंतो लहु अप्पाणं साहारेदि, मणा मणा कंपदि, सचेयणो सुवदि। कध-मेदेसिं पंचण्ह दंसणावरणववएसो ? ण, चेयणमवहरंतस्स सव्वदंसणविरोहिणो दंसणाबरणतं पडि विरोहाभावा । किं दर्शनम ? ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविध्दस्वसंवेदो दर्शन

गिरती हुई लार सहित तथा वार-वार कंपते हुए शरीर और शिर-युक्त होता हुआ जीव निर्भर सोता है। स्त्यानगृध्दिके तीव्र उदयसे उठाया गया भी जीव पुन: सो जाता है, सोता हुआ भी कुछ किया करता रहता है, तथा सोते हुए भी बडबडता है और दांतोंको कडकडता है। निंद्रा प्रकृतिके तीव्र उदयसे जीव अल्प काल सोता है, उठाये जानेपर जल्दी उठ बैठता है और अल्प शब्दके द्वारा भी सचेत हो जाता है। प्रचलाप्रकृतिके तीव्र उदयसे लोचन वालुकासे भरे हुए के समान हो जाते है, सिर गुरु-भारको उठाये हुएसे समान भारी हो जाता है और नेत्र पुन: पुन: उन्मीलन एवं-निमीलन करने लगते है। निद्रा प्रकृतिके उदयसे गिरता हुआ जीव जल्दी अपने आपको सम्हाल लेता है, थोडा थोडा कंपता रहता है और सावधान सोता है।

शंका - इन पांचो निद्राओंके दर्शनावरण संज्ञा कैसे है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, आत्माके चेतन गुणको अपहरण करनेवाले और सर्वदर्शनके विरोधी कर्मके दर्शनावरणत्वके प्रति कोई विरोध नही है।

शंका - दर्शन किसे कहते है ?

समाधान - ज्ञानका उत्पादन करनेवाले प्रयत्नसे सम्बध्द स्व-संवेदन, अर्थात

१, ९-१, १६.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे दंसणावरणीय-उत्तरपयडीओ

आत्मविषयोपयोग इत्यर्थ:। नात्र ज्ञानोत्पादकयत्नस्य तंत्रता, प्रयत्नरहितक्षीणावरणान्तरंगोपयोगस्स अदर्शनत्वप्रसंगात । तत्र चक्षुर्ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविध्दस्वसंवेदने रुपदर्शनक्षमोऽहमिति संभावनाहेतुश्चक्षुर्दर्शनम् । एतदावृणोतीति चक्षुर्दर्शनावरणीयम् । शेषेन्द्रियमनसां दर्शनमचक्षुर्दर्शनम् । तदावृणोतीत्यचक्षुर्दर्शनावरणीयम् । अवधेर्दर्शन अवधिदर्शनम् । तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम् । केवलमसपत्नं केवलं च तद्दर्शनं च केवलदर्शनम् । तस्स आवरणं केवलदर्शनावरणीयम् । बाह्यार्थसामान्यग्रहणं दर्शनंमिति केचिदाचक्षते, तन्न , सामान्यग्रहणास्तित्वं प्रत्यविशेषत: श्रुत-मन:पर्ययोरपि दर्शनस्यास्तित्वप्रसंगात, सामान्यग्रहणमन्तरेण विशेषग्रहणाभावतस्संसारावस्थायां ज्ञान-दर्शनयोरक्रमेण प्रवृत्तिप्रसंगात । न क्रमप्रवृत्तरपि, सामान्यनिर्लुठितविशेषाभावत: तत्रावस्तुनि ज्ञानस्य प्रवृत्तिविरोधात । न च ज्ञानस्य प्रामाण्यं वस्त्वपरिच्छेदकत्वात ।

आत्मविषयक उपयोगको दर्शन कहते है। इस दर्शन में ज्ञानके उत्पादक प्रयत्नकी पराधीनता नही है। यदि ऐसा न माना जाय तो प्रयत्न-रहित, क्षीणावरण और अन्तरंग उपयोगवाले केवलीके अदर्शनत्वका प्रसंग आता है।

उनमे चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञानके उत्पन्न करनेवाले प्रयत्नसे संयुक्त स्वसंवेदनके होनेपर 'मैं रुप देखनेमे समर्थ हूं' , इस प्रकारकी संभावनाके हेतुको चक्षुदर्शन कहते है। इस चक्षुदर्शनके आवरण करनेवाले कर्मको चक्षुदर्शनावरणीय कहते है। चक्षुरिन्द्रियके अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियोंके और मनके दर्शनको अचक्षुदर्शन कहते है। इस अचक्षुदर्शनको जो आवरण करता है वह अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म है। अवधिके दर्शनको अवधिदर्शन कहते हैं । उस अवधिदर्शनको जो आवरण करता है वह अवधिदर्शनावरणीय कर्म है। केवल यह नाम प्रतिपक्ष-रहितका है। प्रतिपक्ष-रहित जो दर्शन होता है उसे केवलदर्शन कहते है। उस केवल दर्शनके आवरण करनेवाले कर्मको केवलदर्शनावरणीय कहते है।

बाह्य पदार्थको सामान्यरुपसे ग्रहण करना दर्शन है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु वह कथन समीचीन नही है, क्योंकि, सामान्य-ग्रहणके अस्तित्वके प्रति कोई विशेषता न होनेसे श्रुतज्ञान और मन:पर्यय - ज्ञान, इन दोनोंको भी दर्शनके अस्तित्वका प्रसंग आता है। अतएव सामान्य - ग्रहणके विना विशेषके ग्रहणका अभाव होनेसे संसार अवस्थामें ज्ञान और दर्शनकी अक्रम अर्थात युगपत प्रवृत्तिका प्रसंग आता है । तथा दर्शनकी उपर्युक्त परिभाषा माननेपर ज्ञान और दर्शनकी संसारवस्थामें क्रमश: प्रवृत्ति भी नहीं बनती है , क्योंकि सामान्यसे रहित विशेष कोई वस्तु नही है और अवस्तुमें ज्ञानकी प्रवृत्ति होनेका विरोध है। यदि अवस्तुमें ज्ञानकी प्रवृत्ति मानी जायेगी की ज्ञानके प्रमाणता नहीं मानी जा सकती, क्योंकि वह वस्तुका अपरिच्छेदक है।

छकखंडागमे जीवट्ठाणं (१, ९-१, १७.

न च विशेषमात्रं वस्तु, तस्यार्थक्रियाकर्तृत्वाभावात। ततः सामान्यमात्मा, सकलार्थसाधारणत्वात्तद्विषय उपयोगो दर्शनमिति प्रत्येतव्यम। केवलज्ञानमेव आत्मार्थावभासकमिति केचित्केवलदर्शनस्याभावमाचक्षते। तन्न, पर्यायस्य केवलज्ञानस्य पर्यायाभावत:सामर्थ्यद्वयाभावात। भावे वा अनवस्था न कैश्चिन्निवार्यते। तस्मादात्मा स्व-परावभासक इति निश्चेतव्यम। तत्र स्वावभास: केवलदर्शनम, परावभास: केवलज्ञानम। तथा सति कथं केवलज्ञान-दर्शनयो: साम्यमिति चेन्न, ज्ञेयप्रमाणज्ञानात्मकात्मानुभवस्य ज्ञानप्रमाणत्वाविरोधात (१ प्र. सा. १, २३.)। इति शब्द: एतावदर्थे, दर्शनावरणीयस्य कर्मण: एतावत्य एव प्रकृतयो नाधिका इत्यर्थ:।

वेदणीयस्य कम्मस्स दुवे पयडीओ।। १७।।

एदं (२ एवं ता. १।) संगहणयसुत्तं, संगहिदासेसविसेसत्तादो। किमट्ठमिदं उच्चदे ? मेहाविज-

केवल विशेष कोई वस्तु भी नहीं है, क्योंकि, उसके अर्थक्रियाकी कर्तृताका अभाव है। इसलिये सामान्य नाम आत्माका है, क्योंकि, वह सकल पदार्थोमें साधारण रुपसे व्याप्त है। इस प्रकारके सामान्यरुप आत्माको विषय करनेवाला उपयोग दर्शन है, ऐसा निश्चय करना चाहिये।

केवलज्ञान ही अपने आपका और अन्य पदार्थोका जाननेवाला है, इस प्रकार मानकर कितने ही लोग केवलदर्शनके अभावको कहते है। किन्तु उनका यह कथन युक्ति-संगत नहीं है,

इसलिये केवलज्ञानके स्व और परकी जाननेवाली दो प्रकारकी शक्तियोंका अभाव है। यदि एक पर्यायके दूसरी पर्यायका सदभाव माना जायगा तो आनेवाला अनवस्था दोष किसीके द्वारा भी नहीं रोका जा सकता है। इसलिये आत्मा ही स्व और परका जाननेवाला है, ऐसा निश्चय करना चाहिये। उनमें स्व-प्रतिभासको केवलदर्शन कहते हैं, और पर-प्रतिभासको केवलज्ञान कहते है।

शंका -- उक्त प्रकारकी व्यवस्था माननेपर केवलज्ञान और केवलदर्शनमें समानता कैसे रह सकेगी ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, ज्ञेयप्रमाण ज्ञानात्मक आत्मानुभवके ज्ञानके प्रमाण होनेंमें कोई विरोध नहीं है।

सूत्रके अंतमें दिया गया 'इति' यह शब्द 'एतावत्' अर्थका वाचक है, अर्थात दर्शनावरणीय कर्मकी इतनी ही प्रकृतियां होती हैं, अधिक नही।

वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतिया है।।१७।।

यह सूत्र संग्रहनयके आश्रित है, क्योंकि, समस्त भेदोंको अपनेमें संग्रह करनेवाला है।

शंका -- यह संग्रहनयाश्रित सूत्र किसलिये कहा जा रहा है ?

१, ९-१, १८.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे वेदणीय-उत्तरपयडीओ

णाणुग्गहट्ठं। संपहि मंदबुध्दिजणाणुग्गहटठमुत्तरसुत्तं भणदि ---

सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव (१ सदसद्वेद्ये।। त. सू. ८, ८ . यदुदयाद्देवादिगतिबु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सद्वेद्यं प्रशस्तं वेद्यं सद्वेद्य - मिति। यत्फलं दु:खमनेकविधं तदसद्वेद्यमप्रशस्तं वैद्यमसद्वेद्यमिति। स. सि.; त. रा.वा. ; त. श्लो. वा. ८, ८. महुलित्तखग्गधारालिहणं व दुहाउ वेअर्णिअं। ओसन्नं सुरमणुए सायमसायं तु तिरिय -निरयेसु।। क. ग्रं १२-१३.)।।१८।।

सादं सुहं, तं वेदावेदि भुंजावेदि त्ति सादावेदणीयं। असादं दुक्खं, तं वेदावेदि भुजावेदि त्ति असादावेदणीयं। एत्थ चोदओ भणदि- जदि सुह - दुक्खाइं कम्मेहिंतो होंति, तो कम्मेसु विणट्ठेसु सुह - दुक्खवज्जएण जीवेण होदव्वं, सुह-दुक्खणिबंधणकम्मा - भावा (२ कमाभावा ता. १।)। सुह-दुक्खविवज्जिओ चेव होदि त्ति चे ण, जीवदव्वस्स णिस्सहावत्तादो अभावप्पसंगा। अह जइ दुक्खमेव कम्मजणियं, तो सादावेदणीयकम्माभावो होज्ज, तस्स फलाभावादो त्ति ? एत्थ परिहारो

उच्चदे। तं जहा - जं किं पि दुक्खं णाम तं असादावेदणीयादो होदि, तस्स जीवसरुवत्ताभावा। भावे वा खीणकम्माण पि दुक्खेण होदव्वं, णाण-दंसणाणमिव कम्मविणासे विणासाभावा। सुहं पुण ण कम्मादो

समाधान -- बुध्दिमान शिष्योंके अनुग्रहके लिये सूत्र कहा गया है।

अब मन्दबुध्दि शिष्योंके अनुग्रहके लिये उत्तरसूत्र कहते हैं ---

सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो ही वेदनीय कर्मकी प्रकृतियां हैं।।१८।।

साता यह नाम सुखका है, उस सुखको जो वेदन कराता है, अर्थात् भोग कराता है, वह सातावेदनीय कर्म है। असाता नाम दु:खका है, उसे जो वेदन या अनुभवन कराता है उसे असातावेदनीय कर्म कहते हैं।

शंका -- यहांपर शंकाकार कहता है कि यदि सुख और दु:ख कर्मोसे होते है तो कर्मोंके विनष्ट हो जानेपर जीवको सुख और दुखसे रहित हो जाना चाहिये, क्योंकि उसके सुख और दुखके कारणभूत कर्मोका अभाव हो गया है। यदि कहा जाय कि कर्मोंके नष्ट हो जाने पर जीव सुखसे और दु:खसे रहित ही हो जाता है, सो कह नहीं सकते, क्योंकि, जीवद्रव्यके नि:स्वभाव हो जानेसे अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। अथवा, यदि दुखको ही कर्म-जनित माना जाय तो सातावेदनीय कर्मका अभाव प्राप्त होगा, क्योंकि, फिर उसका कोई फल नही रहता है ?

समाधान -- यहां पर उपर्युक्त आशंका का परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है -- दु:ख नामकी जो कोई भी वस्तुहै वह असातावेदनीय कर्मके उदयसे होती है, कयोंकि, वह जीवका स्वरुप नहीं है। यदि जीवका स्वरुप माना जाय तो क्षीणकर्मा अर्थात कर्मरहित जीवोंके भी दु:ख होना चाहिये, क्योंकि, ज्ञान और दर्शनके समान कर्मके विनाश होनेपर दु:खका विनाश नही होगा। किन्तु सुख कर्मसे उत्पन्न नहीं होता।

उप्पज्जदि, तस्स जीवसहावत्तादो फलाभावा। ण सादावेदणीयाभावो वि, दुक्खुवसम-हेउसुदव्वसंपादणे (१ हेउदव्वसंपादणे तस्स अत्थित्तण्णहाणुववत्तीदो तहोवजसत्थित्तसिध्दीए ण च मु णासंकणित्तं ता. १) तस्स वावारादो। एवं संते सादावेदणीयस्स पोग्गलविवाइत्तं होइ त्ति

णासंकणिज्जं, दुक्खुवसमेणुप्पण्णसुवत्थियकणस्स दुक्खाविणाभाविस्स उवया-रेणेव लध्दसुहण्णस्स जीवादो अपुधभूदस्स हेदुत्तणेण सुत्ते तस्स जीवविवाइत्तसुह-हेदुत्ताणमुवदेसादो। तो वि जीव-पोग्गलविवाइत्तं सादावेदणीयस्स पावेदि त्ति चे ण, इट्ठत्तादो। तहोवएसो णत्थि त्ति चे ण, जीवस्स अत्थित्तण्णहाणुववत्तीदो तहोवदेस-त्थित्तसिध्दीए। ण च सुह-दुक्खहेउदव्वसंपादयमण्णं कम्ममत्थि त्ति अणुवलंभादो।

जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुभवइ।
तस्सोदयक्खएण दु सुह-दुक्खविवज्जिओ होइ।।७।।

ण च एदीए गाहाए सह विरोहो, सादावेदणीयादो उप्पण्णसुहाभावं पेक्खिऊण

है, क्योंकि, वह जीवका स्वभाव है, और इसीलिए वह कर्मका फल नहीं है। सुखको जीवका स्वभाव माननेपर सातावेदनीय कर्मका अभाव भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, दु:ख-उपशमनके कारणभूत सुद्रव्योंके सम्पादनमें सातावेदनीय कर्मका व्यापार होता है। इस व्यवस्थाके माननेपर सातावेदनीय प्रकृतिके पुदगलविपाकित्व प्राप्त होगा, ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि, दु:खके उपशमसे उत्पन्न हुए, दु:खके अविनाभावी उपचारसे ही सुख संज्ञाको प्राप्त और जीवसे अपृथग्भूत ऐसे स्वास्थ्यके कणका हेतु होनेसे सूत्रमें सातावेदनीय कर्मके जीवविपाकित्वका और सुख-हेतुत्वका उपदेश दिया गया है । यदि कहा जाय कि उपर्युक्त व्यवस्थानुसार तो सातावेदनीय कर्मके जीव विपाकीपना और पुद्‌गलविपाकीपना प्राप्त होता है, सो भी कोई दोष नही, क्योंकि, यह बात हमें इष्ट है। यदि कहा जावे कि उक्त प्रकारका उपदेश प्राप्त नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, जीवका अस्तित्व अन्यथा बन नहीं सकता है, इसलिये उस प्रकारके उपदेशके अस्तित्वकी सिध्दी हो जाती है। सुख और दुखके कारणभूत द्रव्योंका सम्पादन करनेवाला दूसरा कोई कर्म नहीं है, क्योंकि वैसा कोई कर्म पाया नहीं जाता ।

जिसके उदयसे जीव सुख और दुख, इन दोनोंका अनुभव करता है, उसके उदयका क्षय होनेसे वह सुख और दुखसे रहित हो जाता है ।।७।।

पूर्वोक्त व्यवस्था माननेपर इस गाथाके साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सातावेदनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न होने वाले सुखके अभावकी अपेक्षा उपर्युक्त गाथामें

१, ९-१, २०.)   चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे मोहणीय-उत्तरपयडीओ

तत्थ सुह-दुक्खाभावोवदेसादो। दोसु पदेसु एवकारी किमट्ठं कीरदे ? उत्तरुत्तरुत्तर पयडीणमभावपदुप्पायणट्ठं।

मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ (२ त. सू. ८, ५.)॥१९॥

एदं संगहणयसुत्तं संगहिदासेसविसेसत्तादो मेहाविजणाणुग्गहकारी। संपहि मज्झिमबुध्दिजणाणुग्गहट्ठमुत्तरं सुत्तं भणदि जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं, दंसणमोहणीयं चेव चरित्तमोहणीयं चेव ॥२०॥

कधमेदम्हादो मोहणीयस्स कम्मस्स सव्वभेदा अवगम्मंते ? (४ अवगम्मंति मु.) आइरिओवदेसादो। जेत्तिओ एदस्स सुत्तस्स अत्थो तं सव्वमाइरिया परुवेंति। तं परुविज्जमाणं मेहाविणो अवहारयंति। तदो एत्तियमेत्तसुत्तेण कज्जसिध्दीदो वित्थारपरुवणं तेसिमणत्थयमिदि।

मंदबुध्दिजणाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि -

सुख ओर दु:खके अभाव का उपदेश दिया गया है।

शंका - सुत्रमें दोनों पदोपर एवकार किसलिये किया है ?

समाधान - वेदनीय कर्मकी उत्तरोत्तर उत्तर-प्रकतियोंका अभाव बतलानेके लिये दो बार एवकार पद दिया है।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां है॥११॥

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र समस्त विशेषों का संग्रह करनेसे मेधावीजंनोंका अनुग्रह करनेवाला है।

अब मध्यम-बुध्दिजनोंके अनुग्रहके लिये उत्तरसुत्र कहते है -

वह उपर्युक्त मोहनीय कर्म दो प्रकारका है - दर्शनमोहनीय और चारित्र-मोहनीय ॥२०॥

शंका -- इस सूत्रके मोहनीयकर्मके सर्व भेद कैसे जाने जाते है ?

समाधान -- आचार्योके उपदेशसे इस सूत्रका जितना अर्थ है वह सब आचार्य प्ररुपण करते हैं। उस निरुपण किये गये अर्थको बुध्दिमान शिष्य अवधारण कर लेते है। इसलिये इतने

मात्र सूत्र द्वारा कार्यकी सिध्दी होनेसे बुध्दिमान शिष्योंके लिये विस्तारसे निरुपण करना अनर्थक है।

अब मन्दबुध्दिजनोंके अनुग्रहके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं --

----

१ उत्तरोत्तरुत्तर - मु.

४ अवगम्मंति मु.।

जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि (१ त.सू.८, ९. तत्र दर्शनमोहनीयं त्रिभेदं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं तदुभयमिति। तध्दन्धं प्रत्येकं भूत्वा सत्कर्मापेक्षया त्रिधा व्यवतिष्ठते। स. सि. त. रा. वा. त. श्लो. ८, ९. दंसणमोहं तिविहं सम्मं मीसं तहेव मिच्छत्तं। सुध्दं अध्दविसुध्दं अविसुध्द तं हवइ कमसो।। क. ग्रं. १, १४.)।।२१।।

दंसणं अत्तागम-पदत्थेसु रुई पच्चओ सध्दा फोसणमिदि एयट्‌ठो। तं मोहेदि विव-रीयं कुणदि त्ति दंसणमोहणीयं। जस्स कम्मस्स उदएण अणत्ते अत्तबुध्दी, अणागमे आगमबुध्दी, अपयत्थे पयत्थबुध्दी, अत्तागमपयत्थेसु सध्दाए अत्थिरत्तं, दोसु वि सध्दा वा होदि तं दंसणमोहणीयमिदि उत्तं होदि। तं बंधादो एयविहं, मिच्छत्तादिपच्चएहि ढुक्कमाणाण (ढुक्कमाणाण ता. १।) दंसणमोहणीयकम्मक्खंधाणमेगसहावाणमुवलंभा। बंधेण एयविहं दंसण-मोहणीयं कधं संतादो तिविहत्तं पडिवज्जदे? ण एस दोसो (३ जंतेण कोद्‌दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण मिच्छं दव्वं च तिधा असंख्यगुणहीणदव्वकमा।। गो. क. २६.), जंतएण दलिज्जमाण कोददवेसु कोद्‌दव्व-तंदुलध्दतंदुलाणं व दंसणमोहणीयस्स अपुव्वादिकरणेहि दलियस्स

जो दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है, किन्तु उसका सत्कर्म तीन प्रकारका है - सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, और सम्यग्मिथ्यात्व ।।२१।।

दर्शन, रुचि, प्रत्यय, श्रध्दा, और स्पर्शन, ये सब एकार्थ-वाचक नाम है। आप्त या आत्मांमे आगम और पदार्थोमें रुचि या श्रध्दाको दर्शन कहते हैं। उस दर्शनको जो मोहित कराता है,

अर्थात विपरीत कर देता है, उसे दर्शनमोहनीय कर्म कहते है। जिस कर्मके उदयसे अनाप्तमें आप्त-बुध्दि,और अपदार्थमें पदार्थ-बुध्दि होती है; अथवा आप्त , आगम और पदार्थोंमें श्रद्धानकी अस्थिरता होती है ; अथवा दोनोमें भी अर्थात् आप्त-अनाप्तमें , आगम-अनागममें और पदार्थ-अपदार्थमें श्रद्धा होती है , वह दर्शनमोहनीय कर्म है, यह अर्थ कहा गया है। वह दर्शनमोहनीय बंधकी अपेक्षा एक प्रकारका है क्योंकि मिथ्यात्व आदि बंध-कारणोंके द्वारा आने वाले दर्शनमोहनीय कर्मकेस्कन्धोंका एक स्वभाव पाया जाता है।

शंका -- बंधसे एक प्रकारका दर्शनमोहनीय कर्म सत्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका कैसे हो जाता है ?

समाधान --यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जांतेसे (चक्कीसे) दले गये कोदोंमें कोदों, तन्दुल और अर्ध-तन्दुल, इन तीन विभागोंके समान अपूर्वकरण आदि परिणामोंके द्वारा दले गये दर्शनमोहनीयके त्रिविधता पाई जाती है।

१, ९-१, २१.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे मोहणीय-उत्तरपयडीओ

तिविहत्तुवलंभा। तत्थ अत्तागम-पदत्थसध्दाए जस्सोदएण सिथिलत्तं होदि, तं सम्मतं (१ तदेव सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुध्दस्वरसं यदौदासीन्येनावस्थितमात्मन: श्रध्दानं न निरुणध्दि, तद्वेदय मान: पुरुष: सम्यग्ट्टष्टिरित्यमिधीयते। स. सि.; त.रा.वा. ८, ९.)। कधं तस्स सम्मत्तववएसो ? सम्मत्तसहचरिदोदयत्तादो उद्वयारेण सम्मत्तमिदि उच्चदे। जस्सोदएण अत्तागम-पयत्थेसु असध्दा होदि, तं मिच्छतं (२ यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराड्.मुखस्तत्त्वार्थश्रध्दाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्याघष्टिर्भवति-तन्मिथ्यात्वम। स.सि.; त.रा. वा. ८, ९.)। जस्सोदएण अत्तागमपयत्थेसु तप्पडिवक्खेसु य अक्कमेण सध्दा उप्पज्जदि तं सम्मामिच्छत्तं (३ तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रववत्सामिध्दस्वरसं तदुभपमित्याख्यायते सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत। स.सि.; त.रा. वा. ८,९.)। संदेहो कुदो जायदे? सम्मत्तोदयादो सव्वसंदेहो मूढत्तं च मिच्छत्तोदयादो। दंसणमोहणीयं संतदो तिविहमिदि कुदो णव्वदे? आगमदो लिंगदो य (४ आगमदो य ता.१)। विवरीदो अहिणिवेसो मूढत्तं संदेहो

उनमे जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोंकी श्रध्दामें शिथिलता होती है वह सम्यक्त्वप्रकृति है।

शंका -- उस प्रकृतिका 'सम्यक्त्व' ऐसा नाम कैसे हुआ ?

समाधान -- सम्यग्दर्शनके सहचरित उदय होनेके कारण उपचारसे 'सम्यक्त्व' ऐसा नाम कहा जाता है।

जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोमें अश्रध्दा होती है, वह मिथ्यात्व प्रकृति है। जिस कर्मके उदयसे आप्त, आगम और पदार्थोमें, तथा उनके प्रतिपक्षियों में अर्थात कुदेव, कुशास्त्र और कुत्तत्वोंमें, युगपत श्रध्दा उत्पन्न होती है वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है।

शंका -- आप्त, आगम और पदार्थोमें संदेह किस कर्मके उदयसे उत्पन्न होता है?

समाधान - सम्यग्दर्शनका घात नहीं करनेवाला संदेह सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होता है। किन्तु सर्व संदेह, अर्थात सम्यग्दर्शनका सम्पूर्ण रुपसे घात करनेवाला संदेह, और मूढत्व मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होता है ।

शंका -- दर्शनमोहनीय कर्म सत्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान -- आगमसे और लिंग अर्थात अनुमानसे जाना जाता है कि दर्शन-मोहनीय कर्म सत्वकी अपेक्षा तीन प्रकारका है। विपरीत अभिनिवेश, मूढता और

छकखंडागमे जीवट्ठाणं (१, ९-१, २२.

वि मिच्छत्तस्स लिंगाइं। आगमणागमेसु समभावो सम्मामिच्छत्तलिंगं। अत्तागम-पयत्थसध्दाए सिथिलत्तं सध्दाहाणी वि सम्मत्तलिंगं।

जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं, कसायवेदणीयं चेव णोकसायवेदणीयं चेव (१ त. सू. ८, ९.)॥२२॥

पापक्रियानिवृत्तिश्चारित्रम । धादिकम्माणि पावं । तेसिं किरिया मिच्छत्तासंजम-कसाया । तेसिमभावो चारित्तं । तं मोहेइ आवारेदि त्ति चारित्तमोहणीयं । तं च दुविहं कसाय-णोकसायभेदेण । कुदो दुविहत्तसिध्दी ? कसाय-णोकसाएहिंतो पुधभूदतइज्ज-कज्जाणुवलंभादो। एदं संगहणसुत्तं, संगहिदासेसविसेसत्तादो । पज्जवट्ठियसत्ताणु-ग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलसविहं, अणंताणुबंधिकोह-मा माया-लोहं, अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, पच्च-

----

संदेह, ये मिथ्यात्वके चिन्ह है । आगम और अनागमोंमें सम-भाव होना सम्यग्मिथ्यात्वका चिन्ह है। आप्त, आगम और पदार्थोकी श्रध्दामें शिथिलता और श्रध्दाकी हानि होना सम्यक्त्वप्रकृतिका चिन्ह है।

जो चरित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकारका है -- कषायवेदनीय और नो-कषायवेदनीय।। २२।।

पापरुप क्रियाओंकी निवृत्तिको चारित्र कहते हैं। घातिया कर्मोको पाप कहते हैं। मिथ्यात्व, असंयम और कषाय, ये पापकी क्रियाए हैं। इन पाप क्रियायोंके अभावको चरित्र कहते हैं। उस चारित्रको जो मोहित करता है, अर्थात आच्छादित करता है, उसे चारित्रमोहनीय कहते हैं। वह चारित्रमोहनीय कर्म कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीयके भेदसे दो प्रकारका है।

शंका - चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकारका ही है, यह कैसे सिध्द होता है ?

समाधान -- चूंकि, कषाय और नोकषायोंसे पृथग्भूत तीसरे प्रकारका कोई कार्य नहीं पाया जाता, इससे जाना जाता है कि चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकारका है।

यह सूत्र संग्रहनयके आश्रित है, क्योंकि, अपने समस्त विशेषोंका संग्रह करनेवाला है।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंके अनुग्रह केलिए उत्तर सूत्र कहते हैं -

जो कषायवेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकारका है -- अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ ; अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ प्रत्याख्याना -

----

क्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं, कोहसंजलणं, माणसंजलणं, माया-संजलणं (१ मायसंजलण ता. १ । त. सू. ८, ९) लोहसंजलणं चेदि ।।२३।।

दु:खशस्यं कर्मक्षेत्र कृषंति फलवत्कुर्वन्तीति कषाया: क्रोध -मान-माया-लोभा: क्रोधो रोष: संरम्भ इत्यनयन्तिरम। मानो गर्व: स्तब्धत्वमित्येकोऽर्थ। माया निकृति-वंचना अनृजुत्वमिति पर्यायशब्दा:। लोभो गुध्दिरित्येकोऽर्थ:। अनन्तान भवाननुबध्दु शीलं येषां ते अनन्तानुबन्धिन:।

अनन्तानुबन्धिनश्च ते क्रोध-मान-माया लोभाश्च अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभा:। जेहि कोह-माण-माया-लोहाणं अणताणुबंधी सण्णा त्ति उत्तं होदि (३ अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्तं तदनबन्धिनो नन्तानुबन्धिन: क्रोधमानमायालोभा. । स. सि.; त.रा.वा. ८, ९)। एदेसिमुदयकालो अंतोमुहुत्तमेतो चेय, टिठदी चालीससागरोवकोडा-कोडिमेत्ता चेय। तदो एदेसिमणंतभवाणुबंधित्तं ण जुज्जदि त्ति? ण एस दोसो, एदेहि जीवम्हि जणिदसंसकारस्स अणंतेसु भवेसु अवटठाणब्भुवगमादो। अधवा अणंतो अणुबंधो

वरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन ॥२३॥

जो दु:खरुप धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरुपी खेतको कर्षण करते है, अर्थात फलवाले करते है, वे क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय है। क्रोध, रोष संरम्भ, इनके अर्थमें कोई अन्तर नहीं है। मान, गर्व और स्तब्धत्व, ये एकार्थ-वाचक नाम हैं। माया, गर्व और स्तब्धत्व, ये एकार्थ-वाचक नाम हैं। अनन्त भवोंको बांधना ही जिनका स्वभाव है वें अनन्तानुवन्धी कहलाते हैं। अनन्तानुबन्धी जो क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभके साथ जीव अनन्त भवमें परिभ्रमण करता है, उन क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंकी अनन्तानुबनधी संज्ञा है, यह अर्थ कहा गया है।

शंका -- उन अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषायोंका उदयकाल अन्तर्मुहर्तमात्र ही है, और स्थिति चालीस कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण है। अतएव इन कषायोंके अनन्तभवानुवन्धिता घटित नहीं होती है ?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इन कषायोंके द्वारा जीवमें उत्पन्न हुए संस्कारका अनन्त भवोंमें अवस्थान माना गया है। अथवा, जिन क्रोध, मान, माया,

----

१ भवाननुबंधुं ता. २

२ अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्तं तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिन: क्रोधमानमायालोभा.। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.

जेसिं कोह-माण-माया-लोहाणं ते अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहा। एदेहितो वढिडद-संसारो अणंतेसु भवेसु अणुबंधं ण छंडेदि त्ति अणताणुबंधो संसारो। सो जेसिं ते अणंताणुबंधिणो कोह-माण माया-लोहा। एदे चत्तारि वि सम्मत्त- चांरित्ताणं विरोहिणो, दुविहसत्तिसंजुत्तत्तादो। तं कुदो णव्वदे? गुरुवदेसादोजुत्तीदो य। का एत्थ जुत्ती? उच्चदे-ण ताव एदे दंसणमोहणीया, (१ दंसणमोहणिज्जा मु।) सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेहि चेव आव-रियस्स सम्मत्तस्स आवरणे फलाभावादो। ण चारित्तमोहणिज्जा वि, अपच्चक्खाणा-वरणादीहि आवरिदचारित्तस्स आवरणे फलाभावा। तदो एदेसिमभावो चेय। ण च अभावो, सुत्तम्हि एदेसिमत्थित्तपदुप्पायणादो। तम्हा एदेसिमुदएण सासणगुणुप्पतीए

लोभोंका अनुबन्ध (विपाक या सम्बन्ध) अनन्त होता है वे अनन्तानुबन्धि क्रोध, मान, माया, लोभ कहलाते हैं। इनके द्वारा वृध्दिंगत संसार अनन्त भवोमें अनुबन्धको नहीं छोडता है, इसलिये अनन्तानुबन्ध यह नाम संसारका है। वह संसारात्मक अनन्तानुबन्ध जिनके होता है वे अनन्तानु-बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ है। ये चारों ही कपाय सम्यक्त्व और चारित्रके विरोधक है, क्योंकि, वे सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनोंको घातनेवालो दो प्रकारकी शक्तिसे संयुक्त होते है।

शंका -- यह कैसे जाना जाता है?

समाधान -- गुरुके उपदेशसे और युक्तिसे जाना जाता है कि अनन्तानुबन्धी कषायोंको शक्ति दो प्रकारकी होती है।

शंका -- अनन्तानुबन्धि कषायोंकी शक्ति दो प्रकारकी है, इस विषयमें क्या युक्ति है?

समाधान -- पूर्वोक्त शंकाका उत्तर कहते हैं -- सम्यक्त्व और चरित्र, इन दोनोंको घात करनेवाले ये अनन्तानुबन्धी क्रोधादिक न तो दर्शनमोहनीयस्वरुप माने जा सकते हैं, क्योंकि, सम्यक्त्वप्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके द्वारा ही आवरण किये जानेवाले सम्यग्दर्शनके आवरण करनेमें फलका अभाव है और न उन्हें चारित्रमोहनीयस्वरुप भी माना जा सकता है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायोंके द्वारा आवरण किये गये चारित्रके आवरण करनेमें फलका अभाव है। इसलिये उपर्युक्त प्रकारसे अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषायोंका अभाव ही सिध्द होता है। किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, सूत्रमें इनका अस्तित्व पाया जाता है। इसलिये इन

अनन्तानु-उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, सूत्रमें इनका अस्तित्व पाया जाता है। इसलिये इन अनन्तानु-बन्धी क्रोधादि कषायोंके उदयसे सासादन भावकी उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है,

----

१, ९-१, २३.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे मोहणीय-उत्तरपयडीओ

अण्णहाणुववत्तीदो सिध्दं दंसणमोहणीयत्तं चरित्तमोहणीयत्तं च। ण चाणंताणुबंधिचउक्क-वावारो चारित्ते णिफ्फलो, अपच्चक्खाणादिअणंतोदयपवाहकारणस्स णिफ्फलत्तविरोहा। प्रत्याख्यानं संयम:, न प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानमिति देशसंयम:। पचचक्खाणस्स अभावो असंजमो संजमासंजमो वि; तत्थ असंजमं मोत्तूण अपच्चक्खाणसददो संजमासंजमे चेव वट्टदि त्ति कघं णव्वदे? आवरणसददपओगादो। ण च कम्मेहि असंजमो आवरिज्जदि, चारित्तावरणस्स कम्मस्स अचारित्तावरणत्तप्पसंगादो। परिसेसादो (१ परिसेसादो मु.।) अपच्चक्खाण-सददटठो संजमासंजमो चेय। अथवा नञयमीषदथे (२ नजोऽयमीषदर्थे मु.) वर्तते। तथा च न प्रत्याख्यान मित्यप्रत्याख्यानं संयमासंयम इति सिध्दम। न च नञ:। ईषदर्थे वृत्तिरसिध्दा, न रक्ता न श्वेता युवतिनखा: ताम्रा: कुरवका इत्यत्रान्यथा स्ववचनविरोधप्रसंगाद। अनुदरी कुमारीत्यत्र उदराभावत: कुमार्य्या: मरणप्रसंगाच्च। अत्रोपयोगी श्लोक :-

----

इस अन्यथानुपपत्तिसे उनके दर्शनमोहनीयता और चारित्र-मोहनीयता, अर्थात सम्यक्त्व और चारित्रको घात करनेकी शक्तिका होना, सिध्द होता है। तथा, चारित्रमें अनन्तानु-बन्धि-चतुष्कका व्यापार निष्फल भी नहीं है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानादिके अनन्त उदयरुप प्रवाहकेकारणभूत अनन्तानुबन्धी कषायकेनिष्फलत्वका विरोध है।

प्रत्याख्यान संयमको कहते है। जो प्रत्याख्यानरुप है, वह अप्रत्याख्यान है। इस प्रकार अप्रत्यख्यान यह शब्द देशसंयमका वाचक है।

शंका -- प्रत्याख्यानका अभाव असंयम है और संयमासंयम (देशसंयम) भी है। उनमें असंयमको छोडकर अप्रत्याख्यान शब्द केवल संयमासंयमके अर्थमें ही रहता है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान -- आवरण शब्दके प्रयोगसे जाना जाता है कि अप्रत्याख्यान शब्द केवल संयमा संयमके अर्थमें रहता है, कर्मोके द्वारा असंयमका आवरण तो किया नही जाता है, अन्यथा चारित्रावरण कर्मके अचरित्रावरणत्वका प्रसंग आजायगा। अत: पारिशेषन्यायसे अप्रत्याख्यान शब्दका अर्थ संयमासंयम ही है। अथवा नत्रजन्य पद ईषत (अल्प) अर्थमें वर्तमान है। इसलिये जो प्रत्याख्यान नही वह अप्रत्याख्यान अर्थात संयमासंयम है, यह बात सिध्द हुई। नत्र पदकी ईषत अर्थ में वृत्ति असिध्द भी नही है, क्योंकि, इस युवतिके नख न लाल हैं और न सफेद हैं, किन्तु, ताम्र-वर्णवाले कुरवकके समान है इस प्रयोगमें अन्यथा स्ववचन-विरोधका प्रसंग प्राप्त होगा, तथा अनुदरी कुमारी यहां पर उदरके अभावसे कुमारीके मरणका प्रसंग प्राप्त होगा। इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है -

----

३ च अप्रत्याख्यान-ता. १

छखंडागमे जीवटठाण (१, ९-१, २३.

प्रतिषेध यति समस्तं प्रसक्तमर्थ तु जगति नोशब्द:।

स पुनस्तदवयवे वा तस्मादर्थान्तरे वा स्थात ।।८।।

अप्रत्याख्यानं संयमासंयम:। तमावृणोतीति अप्रत्याख्यानावरणीयम् (१ यदुदयाददेशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पापपि कर्तु न शक्नोति, ते देशप्रत्याख्यानमावृण्वन्तोऽप्रत्या-ख्यानावरणा: क्रोधमानमायालोभा:। स.सि.; त.रा.वा. ८,९.)। तं चजव्विहं कोह-माण-माया-लोहभेएण। पच्चक्खाणं संजमो महव्वयाइं ति एयटठो। पच्चक्खाणमावरेंति त्ति पच्चक्खाणावरणीया कोह-माण माया-लोहा (२ यदुदयाद्विरर्तिं कृत्स्नां संयमाख्यां न शक्तोतिकर्तु ते कृत्सतं प्रत्याख्यानभावृण्वन्त: प्रत्याख्यानावरणा: क्रोधमानमायालोभा:। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.)। सम्यक ज्वलतीति संज्वलनम। किमत्र सम्यक्त्वम? चारित्रेण सह ज्वलनम। चारित्तमविणासेंता उदयं कुणंति त्ति जं उत्तं होदि (३ समेकीभावे वर्तते। संथमेन सहावस्थानादेकीभूय ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येवु सत्स्वपीति संज्वलना: क्रोधमानमायालोभा:। स. सि.; त. रा. वा. ८, ९.)। चारित्तभविणासेंताणं संजुलणाणं कधं चारित्तावरणत्तं जुज्जदे? ण, संजमम्हिमलमुप्पाइय

जहाक्खादचारित्तुप्पत्तिपडिबंधयाणं चारित्तावरणत्ता-विरोहा। ते वि चत्तारि कोह-माण-माया-लोहभेदण। कोहाइसु पादेक्कं संजुलणसददुच्चा

जगतमें न यह शब्द प्रसक्त समस्त अर्थका तो प्रतिषेध करता है। किन्तु वह प्रसक्त अर्थके अवयव अर्थात एक देशमें, अथवा उससे भिन्न अर्थमें रहता है, अर्थात उसका बोध कराता है।। ८।।

अप्रत्याख्यान संयमासंयमका नाम है। उस अप्रत्याख्यानको जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं। उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं। वह क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारका है; प्रत्याख्यान, संयम और महाव्रत, ये तीनों एक अर्थवाले नाम हैं। प्रत्याख्यानको जो आवरण करते हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभकषाय कहलाते हैं। जो सम्यक प्रकार जलता है, उसे संज्वलन कषाय कहते हैं।

शंका -- इस संज्वलन कषायमें सम्यकपना कया है ?

समाधान - चारित्रके साथ जलना ही इसका सम्यकपना है। अर्थात चारित्रको नहीं विनाश करते हुए ये कषाय उदयको प्राप्त होते है, यह अर्थ कहा गया है।

शंका -- चारित्रको नहीं विनाश करनेवाले संज्वलन कषायोंके चारित्रावरणता कैसे बन सकती है?

समाधान - नहीं, क्योंकि, ये संज्वलन कषाय संयमसे मलको उत्पन्न करके यथाख्यात चारित्रकी उत्पत्तिके प्रतिबंधक होते है, इसलिये इनके चारित्रावरणता माननेमें कोई विरोध नही है।

ये संज्वलन कषाय भी क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारके हैं।

चारितविणासेंता ता. १।

मलमुव्वाइय मु.

रण किमटठं ? पच्चक्खाणपच्चखाणावरणाणं (१ पच्चक्खाणापच्चक्खाणावरणं) व संजलणाणं बंधोदयाभावं पडि पच्चासत्ती णत्थि त्ति जाणावणटठं।

जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं त णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुर्गछा चेदि(त.सू.८,९)।।२४।। एत्थ णोसददो देसपडिसेहओ घेतव्वो, अण्णहा एदेसिमकसायत्तप्पसंगादो।

शंका -- क्रोधादिकोंमें प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका उच्चारण किसलिये किया गया है ?

समाधान -- प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषायोंके समान संज्वलन कषायोंके बंध और उदयके अभावके प्रति प्रत्यासत्ति नहीं है, इस बातके बतलानेके लिये सूत्रमें क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका उच्चारण किया गया है।

विशेषार्थ-सूत्रमें क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दके उच्चारणका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चतुर्थ गुणस्थानमें अप्रत्यरुपानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों कषायोंकी एक साथ ही बंध-व्युच्छित्ति और एक साथ ही उदय-व्युच्छित्ति होती है; तथा जिस प्रकार पंचम गुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायोंकी एक साथ ही बंध-व्युच्छित्ति और एक साथ ही उदयव्युच्छित्ति ही होती है, उस प्रकारसे नवमें गुणस्थानमें क्रोधादि चारों संज्वलन कषायोंकी एक साथ न तो बंध-व्युच्छित्ति ही होती है और न उदय-व्युच्छित्ति ही होती है। किन्तु पहले यहांपर क्रोधसंज्वलनकी बंधसे व्युच्छित्ति होती है, पुन: मानसंज्वलनकी, पुन: माया-संज्वलनकी, और सबसे अन्तमें लोभसंज्वलकी, बंध-व्युच्छित्ति होती है। यही क्रम इनकी उदयव्युच्छित्तिका भी है। विशेषता केवल यह है कि सूक्ष्मलोभ संज्वलन कषायकी उदय-व्युच्छित्ति दशवें गुणस्थानके अन्तमें होती है। अतएव यह सिध्द हुआ कि प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषायोंके समान संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभकषायकी, बंध-व्युच्छित्ति और उदय-व्युच्छित्तिकी अपेक्षा, प्रत्यासत्ति या समानता नहीं है। इसी विभिन्नताके स्पष्टीकरणके लिए सूत्रकारने सूत्रमे क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका प्रयोग किया है :

जो नो कषायवेदनीय कर्म है वह नौ प्रकारका है - स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अति, शोक, भय और जुगुप्सा ।।२४।।

यहां पर, अर्थात नोकषाय शब्दमें प्रयुक्त नो शब्द, एकदेशका प्रतिवेध करनेवाला ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा इन स्त्रीवेदादि नवों कषायोके अकषायताका प्रसंग प्राप्त होगा।

होदु चे ण, अकसायाणं चारित्तावरणत्तविरोहा। ईषत्कषायो नोकषाय इति सिध्दम। अत्रोपयोगी श्लोक:-

भावस्तत्परिणामो द्विप्रतिषेधस्तदैक्गमनार्थ: ।

नो तददेशविशेषप्रतिषेधोऽन्य: स्व-परयोगात ॥९॥

कसाएहिंतो णोकसायाणं कधं थोबत्तं? ट्ठिदीहितो अणुभागदो उदयदो य । उदयकालो णोकसायाणं कसाएहिंतो बहुओ उवलब्भदि त्ति णोकसाएहिंतो कसायाणं थोबत्तं किण्णेच्छिज्जदे? ण, उदयकालमहल्लत्तणेण चारितविणासिकसाएहिंतो तम्मल-फलकम्माणं महल्लत्ताणुववत्तीदो। स्तृणाति छादयति (१ आच्छादयति मु.।) दोषैरात्मानं परं चेति स्त्री (२ यदुदयात्स्त्रैणान भावान प्रतिपद्यते स स्त्रीवेद:। स. सि. ८, ९. यस्योदयात स्त्रैमाण भावान मार्दवास्फुटत्वक्लैव्यमदनावेशनेत्रविभ्रमास्फालनसुखपुंस्कामादीन प्रतिपद्यते स स्त्रीवेद । त. रा. वा. ८, ९. छादयदि सय दोसेण यदो छाददि परं वि दोसेग। छादनसीला जम्हा तम्हा सा वाण्णिया इत्थो।। गो.जी. २७३.)। पुरुकर्मणि शेते प्रमादयतीति पुरुष:। न पुमान्न एदस्स अहिप्पाओ

शंका -- होने दो, क्या हानि है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अकषायोंके चारित्रको आवरण करनेका विरोध है ।

इस प्रकार ईषत् कषायको नोकषाय कहते है, यह सिध्द हुआ। इस विषयमें यह उपयोगी श्लोक है -

भाव वस्तुके परिणामको कहते है, दो चार प्रतिषेध उसी वस्तुकी एकताका ज्ञान कराता है। नो यह शब्द स्व और परके योगसे विवक्षित वस्तुके एकदेशका प्रतिषेधक और विधायक होता है ॥९॥

शंका -- कषायोंसे नो कषायोंके अल्पपना कैसे है?

समाधान -- स्थित्तीयोंकी, अनुभागकी और उदयकी अपेक्षा कषायोंसे नोकषायोंके अल्पता गाई जाती है।

शंका -- नोकषायोंका उदय-काल कषायों की अपेक्षा बहुत पाया जाता है, इसलिये नोकषायोंकी अपेक्षा कषायोंके अल्पपना क्यों नहीं मान लेते है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उदय-काल की अधिकता होनेसे चारित्र-विनाशक कषायोंकी अपेक्षा चारित्रमें मलको उत्पन्न करनेरुप फलवाले कर्मोके महत्ता नहीं बन सकती है।

जो दोषोंके द्वारा अपने आपको और परको आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते है। जो महान कर्मोमें शयन करता है, या प्रभत्त होता है उसे पुरुष कहते है। जो न पुरुषरुप हो, और न स्त्रीरुप हो उसे नपुंसक कहते है। इस उपर्युक्त कथनका

१, ९-१, २४.) चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे मोहणीय-उत्तरपयडीओ

जेसिं कम्मक्खंधाणमुद्रएण पुरुसम्मि आकंखा उप्पज्जइ तेसिमित्थिवेदो त्ति सण्णा। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण

(१ जेसिमुदएण मु.) महेलियाए उवरि आकंखा उप्पज्जइ तेसि पुरिसवेदो त्ति सण्णा (२ यस्योदयात्पौंस्त्रान्भावानास्कन्दति स पुंवेदः । स. सि.; त.रा.वा.८,९. पुरुगुणभोगे सेदे करोदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं। पुरुउत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो।। गो.जो. २७२.)। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण (३ जेसिमुदएण मु.) इटटावागग्गिसरिच्छेग दोसु वि आकंखा उप्पज्जइ तेसिं णउंसगवेदो त्ति सण्णा (४ यदुदयान्नापुंसकान भावायुपव्रजति स नपुंसकवेद। स.सि.त.; रा.वा.८, ९. णेवित्थी णेव पुम णउंसओ उहयलिगवदिरित्तो । इटठावग्गिसमाणगवेदणगरुओ कलुसचित्तो।। गो.जी. २७४.)। हसनं हासः। जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण हस्सणिमित्तो जीवस्स रागोउप्पज्जइ, तस्स कम्मक्खंधस्स हस्सो त्ति सण्णा(५ यस्योदयाध्दास्वाविर्भावस्तध्दास्यम। स.सि.;त. रा. वा. ८, ९.), कारणे कज्जुवयारादो। रमणं रतिः, रम्यते अनया इति वा रतिः। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु रदी समु-प्पज्जइ, तेसिं रदि त्ति सण्णा) (६ यदुदयाध्दिषयादिष्वौत्सुक्यं सा रतिः। स.सि.; त.रा.वा.८,९)। दव्य-खेत-काल-भावेसु जेसिमुदएण जीवस्स अरई समुप्पज्जइ तेसिमरदि त्ति सण्णा (७ अरतिस्तध्दिपरीता। स.सि.; त.रा.वा. ८, ९)। शोचनं शोकः, शोचयतीति वा शोकः। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स सोगो समुप्पज्जइ तेसिं सोगो त्ति सण्णा (८ यध्दिपाकाच्छोचनं स शोक। स.सि.; त. रा. वा. ८,९)। भीतिर्भयम। जेहिं कम्मक्खंधेहिं

उदयमागदेहि जीवस्स भयमुप्पज्जइ तेसिं भयमिदि सण्णा (९ यदुदयादुदेगस्तदभवम । स.सि.; त.रा.वा.८,९) कारणे

अभिप्राय यह है -- जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे पुरुषमें आकांक्षा उत्पन्न होती है उन कर्म-स्कन्धोंकी स्त्रीवेद यह संज्ञा है। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे स्त्रीके ऊपर आकांक्षा उत्पन्न होती हैउनकी पुरुषवेद यह संज्ञा है। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे ईटोंके अवाकी अग्निके समान स्त्री और पुरुष, इन दोनो पर भी आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी नपुंसक वेद यह संज्ञा है। हंसनेको हास्य कहते हैं। जिस कर्म-स्कन्धके उदयसे जीवके हास्य-निमित्तक राग उत्पन्न होता है। उस कर्म-स्कन्धकी कारणमें कार्यके उपचारसे हास्य यह संज्ञा है। रमनेको रति कहते है, अथवा जिसके द्वारा जीव विषयोंमें आसक्त होकर रमता है उसे रति कहते हैं। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंमें राग-भाव उत्पन्न होता है, उनकी रति यह संज्ञा है। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल ओर भावोंमें राग-भाव उत्पन्न होता है, उनकी रति यह संज्ञा है। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंमें जीवके अरुचि उत्पन्न होती है उनकी अरति यह संज्ञा है। सोच करनेको शोक कहते हैं। जिन कर्म स्कन्धोंके उदयसे जीवके शोक उत्पन्न होता है उनकी शोक यह संज्ञा है। भीतिको भय कहते है। उदयमें आये हुए जिन कर्म-स्कन्धोंके द्वारा जीवके भय उत्पन्न होता है उनकी कारणमें कार्यके उपचारसे भय

कज्जुवयारादो। जुगुप्सनं जुगुप्सा। जेसिं कम्माणमुदएण दुगुंछा उप्पज्जदि तेसि दुगुंछा इदि सण्णा

(१ यदुदयादात्मदोषसंवरणमन्यदोषस्याधारण सा जुगुप्सा। स.सि.;त.रा.वा. ८,९.)। एदेसिं कम्माण्णत्थित्तं कुदो णव्वदे? पच्चक्खेणुवलंभमाण - अण्णाणादंसणादिकज्जण्णहाणुववत्तीदो।

आउगस्स कम्मस्स चत्तरि पयडीओ (२ त.सू. ८,५.)।। २५।।

एदं दव्वट्ठियणसुत्तं, संगहिदासेसविसेत्तादो। कधमेदम्हादो सव्वत्थावगई एदमाधारभूदं काऊण एदस्स सयलत्थपदुप्पादयआइरियादो। पज्जवट्ठियणयजणाणु- ग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदिझ

णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि (३ त.सू. ८, १०.)।। २६।।

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स उध्दगमणसहावस्स णेरइयभम्मि अवट्ठाणं होदि तेसिं णिरयाउवमिदि सण्णा (४ यभ्दावाभावयोर्जीवितमरणं तदायु:। xxx नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेवु यन्निमित्तं दीर्घजीवनं तन्नारकायु:। त.रा.वा.; त. श्लो. वा. ८, १०)। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण तिरिक्खभवस्स अवट्ठाणं

यह संज्ञा है। ग्लानि होनेको जुगुप्सा कहते हैं। जिन कर्मोके उदयसे ग्लानि उत्पन्न होती है उनकी जुगुप्सा यह संज्ञा हैं।

शंका -- इन कर्मोका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान -- प्रत्यक्षके द्वारा पाये जानेवाले अज्ञान, अदर्शन आदि कार्योकी उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे उक्त कर्मोका अस्तित्व जाना जाता है।

आयुकर्मकी चार प्रकृतियां हैं।।२५।।

यह संग्रहनयाश्रित सूत्र है, क्योंकि, अपने भीतर समस्त विशेषोंका संग्रह करनेवाला है।

शंका -- इस सूत्रसे सम्पूर्ण अर्थोका ज्ञान कैसे होता है

समाधान -- इस सूत्रको आधारभूत करके आगमानुकूल सभी अर्थोके प्रतिपादन करनेवाले आचार्यसे सम्पूर्ण अर्थोका ज्ञान प्राप्त होता है।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंका अनुग्रह करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं इ

नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु, ये आयुकर्मकी चार प्रकृतियां हैं।।२६।।

जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे ऊर्ध्वगमन स्वभाववाले जीवका नारक - भवमें अवस्थान होता है, उन कर्म-स्कन्धोंकी नरकायु यह संज्ञा है। जिन कर्म-स्कन्धोंके उदयसे तिर्यच -

----

होदि तेसिं तिरिक्खाउअमिदि सण्णा (१ क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिकृतोपद्रवप्रचुरेषु तिर्यक्षु यस्योदयाद्वसनं ततैर्यग्योनं। त.रा.वा.; त. श्लो.वा.८,१०.)। एवं मणुस-देवाउआणं पि वत्तव्वं (२ शारीरमानससुखदु:खभूयिष्ठेयू मनुष्येवु जन्मोदयात मनुष्यायुष:। शारीरमानससुखप्रायेषु देवेषु जन्मोदयात देवायुषः त.रा.वा.;त. श्लो.वा.८,९.)। जधा घड-पड थंभादीणं पज्जायाणमवटठाणं वइससियमेवं णिरयभवादिपज्जायाणं पि वइससिए अवटठाणे जादे को दोसो चे? ण, अकारणे

अवटठाणे संते णियमविरोहादो। देव-णेरइयाणं जहण्णमवटठाणं दसवाससहस्मणि, उक्कस्सभवटठाणं तेत्तीसं सागरोवमाणि। तिरिक्ख-मणुसाणं जहण्णमंतोमुहुत्तं, उक्कस्सभवाटठाणं तेत्तीसं सागरोवमाणि। तिरिक्ख-मणुसाणं जहण्णमंतोमुहुत्तं, उक्कस्सभवावटठाणं तेत्तीसं सागरोवमाणि। तिरिक्ख-मणुसाणं जहण्णमंतोमुहुर्त, उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि, एसो णियमो ण जुज्जदे, तिण्णि समयमाइं काऊण उक्कस्सेण मेरुपव्वदादिसु अणादि-अपज्जवसिदसरुवेण संटठाणा-वटठाणुवलंभा। तम्हा भवावटठाणेण सहेउएण होदव्वं, अण्णहा सरोरंतरं गयाणं पि णिरयगदीए उदयप्पसंगादो।

णामस्स कम्मस्स वादालीसं पिंडपयडीणामाइं (३ त. सू. ८,५) (३ सम्याइं मु.)।। २७।।

एदस्स संगहणयसुत्तस्स अत्यो जाणिय वत्तव्वो।

भवमें जीवका अवस्थान होता है उन कर्म-स्कन्धोंकी ''तिर्थगायु''यह संज्ञा है। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुका भी स्वरुप कहना चाहिये।

शंका -- जिस प्रकार घट, पट और स्तम्भ आदिक पर्यायोंका अवस्थान वैस्त्रसिक (स्वाभाविक) होता है, उसी प्रकार नरक-भव आदि पर्यायोंके भी वैस्त्रसिक अवस्थान होनेपर क्या दोष है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, अकारण अवस्थान माननेपर नियममें विरोध आता है। अर्थात देव और नारकोंका जघन्य अवस्थान दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट भवसम्बन्धी अवस्थान तेतीस सागरोपम है, तिर्यंच और मनुष्योंका जघन्य अन्तर्मुहर्त और उत्कृष्ट अवस्थान तीन पल्योपम है यह नियम नहीं घटित होता है। और इस नियमके अभावमें पुदगलोंके समान अनियमसे अवस्थान प्राप्त होगा।

शंका-- पुदगलोका अनियमसे अवस्थान कैसे है ?

समाधान -- पुदगलोंका एक, दो, तीन समयोंसे लेकर उत्कृष्टसे मेरुपर्वत आदिमें अनादि-अनन्तस्वरुपसे एक ही आकारका संस्थान पाया जाता है।

इसलिए भव-सम्बन्धी अवस्थानको सहेतुक होना चाहिये, अन्यथा अन्य शरीरको गये हुए भी जीवोके नरकगतिके उदयका प्रसंग प्राप्त होगा।

नाम कर्मकी व्यालीस पिंडप्रकृतियां हैं।।२७।।

इस संग्रहनयाश्रित सूत्रका अर्थ ज्ञान करकेकहना चाहिये ।

छखंडागमे जीवटठाणं (१, ९-१, २८.

गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघाद-णामं सरीरसंटठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्ण-णामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुअलहुवणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिर-णामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दूभगणामं सुस्सरणामं दुस्सर-णामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिगणामं तित्थयरणामं चेदि (१ त.सू.८,११ ता.१ प्रतै, आस्या सूत्रे सुहणानं अणादेन इतितानद्रंद नेणिताम्यते)।।२८।।

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे - गतिर्भवः संसार इत्यर्थः। यदि गतिनामकर्म न स्यात अगतिर्जीवः स्यात । जम्हि जीवभावे आउकंम्मादो लध्दावटठाणे संते सरीरादियाई कम्माइमुदयं गच्छंति सो भावो जस्स पोग्गलक्खंधस्स मिच्छत्तादिकारणेंहि पतस्स कम्मभावस्स उदयादो होदि तस्स कम्पक्खंधस्स गति त्ति सण्णा (२ यदुदयादात्मा भवान्तंर गच्छति सा गतिः।। स.सि.; त.रा.वा.; त. श्लो. ८, ११)।

गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीरबंधननाम, शरीरसंघातनाम, शरीर, संस्थाननाम, शरीर-अंगोपांगनाम, शरीरसंहतननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपवातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतापनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भवनाम, सुरुवरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अपशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थकरनाम, ये नामकर्मकी ब्यालीस पिंडप्रकृतियां हैं।। २८।।

इस सूत्रका अर्थ कहते है- गति यह नाम भव अर्थात संसारका है। यदि गतिनामकर्म न हो, तो जीव गतिरहित हो जाय। जिस जीव-भावमें आयुकर्मसे अवस्थानकेप्राप्त करनेपर शरीर आदि

कर्म उदयको प्राप्त होते हैं वह भाव मिथ्यात्व आदि कारणोंके द्वारा कर्मभावको प्राप्त जिस पुदगल-स्कन्धके उदयसे उत्पन्न होता है, उस कर्म-स्कन्धकी गति यह संज्ञा है।

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे णाम -उत्तरपयडीओ

जातिर्जीवानां सदृशपरिणाम : (तासु नरकादिगतिष्वव्यभिचारिणा सादृश्येनैकोकृतो ऽर्थात्मा जाति :। स. सि. त. रा. वा. ; त. श्लो . वा. ८ , ११ .) यदि जातिनाम कर्म न स्यात मत्कुणा मत्कुणै :, वृश्चिका वृश्चिकै:,पिपिलिका :पिपीलिका भि :,बी्रहिभि :, शालय :शालिभि : समाना न जायेरन् । दृश्यते च सादृश्यम। तदो जत्तो कम्मक्खंधादो जीवाणं भुओ सरिसत्तमुप्पज्जदे,सो कम्मक्खं धो कारणे कज्जुयारोदो जादि त्ति भण्णदे। जदि पारिणामिओ सरिसपरिणामो णत्थि तो सरिसपरिणामकज्जण्णहाणुववत्तीदो तक्कारण कम्मस्स अथितं सिज्झेज्ज । किंतु गंगाावालुवादिसु परिणामिओ सरिसपरिणामो उव लब्भदे , तदो अणेयंतियादो सरिसपरिणामो अप्पणो कारणीभूदकम्मस्स अत्थितं णं साहेदि त्ति ? ण एस दोसो, गंगवालुआणं पुढविकाइयणामकम्मोदएण सरिसपरि णामत्तब्भहुवगमादो । परमाणुसु सरिसपरिणामो परिणामिओ उवलब्भदि, तदो हेऊ अणेयंतिओ त्ति ण सक्किज्जदे वोत्तु , साहणदोसेसु अणेयंतियस्स अभावा । अण्णहाणु ववतिविरहेण साहणस्स ओक्खतं जायदे , ण अण्णहा, अव्ववत्थादो । ण च एत्थ अण्ण हाणुववत्ती णत्थि, उवलंभादो । किं च जदि जीवपडिग्गहिदपोग्गलक्खंधसरिसपरिणामो `

जीवांको सदृश परिणामो की जाति कहते है। यदि जातिनामकर्म न हो, तो खटमल खटमलोके साथ , बिच्छु बिच्छुओंके साथ, चीटियां चीटियोंके साथ, धान्य धान्यके साथ और शालि शालिके साथ समान होगी । किन्तु इन सबमें परस्पर सदृशता दिखाई देती है। इसलिए जिस कर्म -स्कन्धसे जीवोंके अत्यन्त सदृशता उत्पन्नर होती है वह कर्म -स्कन्ध कारणमें कार्यके कारणमें कार्यके उपचारसे जाति दस नामाला कहता है।

शंका -- यदि परिणामीक सदृश परिणाम नही है, तो सदृश परिणाम रूप कार्य उत्पन्न हो नहीं सकता , इस अन्यथानुपपत्तिसे उसके कारणभूहत कर्मकाअस्तित्व भले हि सीध्द होवे।

किन्तु गंगा नदीकी वालुका आदिमें पारिणामिक सदृश परिणाम पया जाता है, इसलिये हेतुके अनैकान्तिक होनेसे सदृश परिणाम अपने कारणीभुत कर्मके अस्तित्वको नहीं सिध्द करता है ?

समाधान --यह कोई दोष नहीं, क्योंकि , गंगानदीकी वालूकाके पृथ्वीकायिक नामकर्मके उदयसे सदृश -परिणामता मानी गई है। परिमाणुओमे सदृश परिणाम स्वाभाविक पाया जाता है , इसलिए उपर्युक्त हेतू अनैकान्तिक है , ऐसा भी नही , कह सकते , क्योंकि हेतु सम्बधी दोषोमें अनैकान्तिक नामके दोषका अभाव है। अन्यथानुपपत्तिके अभावसे साधनके अविक्षिप्तता प्राप्त होती है , अन्य प्रकारसे नही है , क्योंकि अन्य प्रकारसे माननेपर अव्यवस्था उत्पन्न होती है , यहांपर अन्य थानुपपति न हो, यह बात नही है , क्योंकी यहां वह पाई जाती है। दुसरी बात यह है, कि यदि जीवके

छक्खंडागमे जीवटठाणं

पारिणामोओ वि अत्थि, तो होऊ अणेयंतिओ होज्ज । ण च एवं, तहाणुवलंभा । जदि जीवाणं सरिसपरिणामो कम्मायतो ण होज्ज, तो चउरिंदियाहय -हत्थि -बग्ध -छवलादि संठाणा होज्ज, पंचिदिया वि भमर -मक्कुण -सलहिंदगोव -खुल्लक्ख -रुक्खसंठाणा होज्ज । ण चेवमणुवलंभा, पडिणियदसरिसरिणामेसु अवटिठदरुक्खादिणमुवलंभा च । तदो ण पारिणामिओ जीवाणं सरिसपरिणामो ति सिध्दं ।

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए पोगगलक्खंधा तेजा -कम्मइयवग्गण पाग्गलक्खंधा च सरीरजोग्गपरिणामेहि परिणदा संता जीवेण संबज्झंति तस्स कम्मक्खंधस्स सरीरमिदि सण्णा (यदुदयादात्मन: शरीरनिर्वृत्तिस्तच्छरीरनाम । स. सि.; त. रा. वा.;त. श्लो . वा. ८ ११)जदि सरीरणाम कम्मं जीवस्स ण होज्ज, तो तस्स अहसरीरतं पसज्जदे। असरीरत्तादो अमुत्स्स ण कम्माणि, विमुत्त -मुत्ताणं पोग्गलप्पांणं संएधाघीवादो । होदु चे ण, सव्वजीवाणं सिध्दसमाणतावत्तीदो संसाराभावप्पसंगा। सरीरटटमागयाणं पोगगलक्खंधाणं जीवसंबध्दाणं जेहि पोग्गलेहि

जीवसंबध्देहि पत्तोदएहि

व्दारा ग्रहण किये गये पुदगल -स्कन्धोका सदृश परिणाम पारिणामिक भी हो, तो हेतु अनेकान्तिक होवे ं?

किन्तु ऐसा नही है, क्योंकि उस प्रकारका अनहुपलम्भ है। यदि जीवोंका सदृश परिणाम कर्म के आधिन न होवे , तो चतुरिन्द्रिय जीव घोडा, हाथी , भेडिया, बाघ और छबल्ल आदिकेआकारवाले हो जायेगे । तथा पचेन्द्रिय जीव भी भ्रमर मत्कुण , शलभ, इन्द्रगोप, क्षुल्लक , अक्ष और वृक्ष आदिके आकारवाले हो जायेगे । किन्तु इस प्रकार है नही, क्योंकि इस प्रकारके वे पाये नही जाते, तथा प्रतिनियत सदृश परिणाम पारिणामिक नही है, यह सिध्द हुआ जिस कर्म के उदयसे आहारवर्गाणाके पुदगल -स्कन्ध तथा तैजस और कार्मणवर्गणाके पुदगल स्कन्ध शरीरयोग्य परिणामोके व्दारा परिणत होते हुए जीवके साथ सम्बिध्द होते है उस कर्म-स्कन्धकी शरीर यह संज्ञा है।

यदि शरीर नाम कर्म जीवके न हो, तो जीवके अशरीरताका प्रसगं आता है। शरीर -रहित होनेसे अमूर्त आत्मोका कर्मोका होना भी सैंभव नही ं है , क्योंकी मुर्तै पूदगल और अमुर्त आत्माके सम्बन्ध होनेका अभाव है।

शंका ---अमुर्त आत्मा और मूर्त पूदगल , इन दोनो का यदि सम्बध नही हो सकता , तो न होवे, क्या हानि है ?

समाधान -----नहीं, क्योंकी, वैसा माननेपर सभी संसारी जीवोके समान होनेकी आपत्तिसे संसारके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा ।

शरीरके लिए आए हुए , जीव सम्बध्द पुदगल -स्कन्धोंका जिन जीव -सम्बध्द और

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे णाम-उत्तरपयडीओ

परेप्पंर बंधो कीरइ तेसिं पोग्गलक्खंधाणं सरीरबंधणसण्णा (शरीरनामकर्मोदयवशादूपातानां पुदगलानाम न्योन्यप्रदेशश्लो णं भवति तव्दननाम । स. सि . त . रा. वा . ८, ११) कारणे कज्जुवयारादो , कत्तारणिददेसादो वा ।

जइ सरीरबंधणणामकम्मं जीवस्स ण होज्ज , तो वालुकाय पुरिससरीरं व सरीरं होज्ज, परमाणुणमण्णोण बंधाभावा ।

जहि कम्मक्खधेहि उदय पत्तेहि बंधणणामकम्मोदएण बंधमागयाणं सरीरपोगगलक्ख्धाणं मटठतं कीरदे नेसिं सरीरसंघादसण्णां (यदुदयादौरिकादिशरीराणां विवरविरहितान्योन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वपादनं भवति तत्संघतनाम । स. सि. ८ ११ . अविवर भावे नैकत्वकरणं संवातनामकर्म। संघातनामकर्म त. रा. वा. त. श्लो . वा. ८ ११) जदि सरीरसांघदणमकम्मं जीवस्स ण होज्ज , तो ति तिलमोअओ व्व अवुटटसरीरो जीवो होज्ज ण चेवं , तहाणुवलंभा। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जाइ कम्मोदयपरततेण सरीरस्स संठाणं कीरदे तं सरीरसंठाणं णाम। सरीरसठाणण्णामकम्मा भावे जीवसरीरमसंठाण होज्ज । होदु चे ण, संठाणोभावे सरीस्सैभावप्पसंगादो। ण च णिरुहेअं सरीरसंठाणं , णिरुहेउअस्स संठाणस्स जाई सु णियमविरोहा । ण च

उदय प्राप्त पुद्गलोके साथ परस्पर बंध किया जाता है उन पुदगल स्कन्धोकी शरीरबंधन यह संज्ञा कारण में कार्यकी उपचारोसें अथवा, कर्तृनिद्रेशसे है। यदि शरीरंबंधननामकर्म जीवके न हो, तो वालुका व्दारा बनाये गये पुरुष शरीर (पुतला) के समान जीवका शरीर होगा, क्योंकी परमाणुओंका परस्परमें बंध नही है । उदयको प्राप्त जिन कर्म स्कधों व्दारा बधननामकर्मके उदयसे बंधके लिऐ आये हुए शरीर-सम्बधी शरीरसंघात यह संज्ञा है। यदि संघातनामकर्म जीवके न हो, तो तिलके मोदकके समान अपुष्ट शरीरवाला जीव हो जावे । किन्तु ऐसा है नही, क्योंकी, तिलके मोदकके समान सहंश्लेष रहित परमाणुओंवाला शरीर पाया नही जाता । जातिनामकर्मके उदयसे परतन्त्र जिन कर्म स्कंधोके उदयसे शरीरका आकार बनता है वह शरीरसंस्थाननामकर्म है। शरीरसंस्थाननामकर्म के अभावमे ं जीवका शरीर आकृति रहित हो जायगा।

शंका --शरीरीसंस्थाननामकर्मके अभाव माननेपर यदि जीवका शरीर आकृति रहित होता है, तो होने दो ?

समाधान --नहीं , क्योंकि, संस्थानके अभाव माननेपर शरनीरके अभावका प्रसंग आता है। और शरीरसंस्थान निर्हेतुक माना नही जा सकता, क्योंकी, व्दीन्द्रिय आदि जातियोमें निर्हेतुक संस्थानके नियमका नियमका विरोध है। तथा जातियोंमे सस्थांनका नियम

छक्खंडागमे जीवटटाणं

णियमो असिध्दो, हय-हत्थि-हरिणेसु संठाणणियमुवलंभा। तदो सिध्दं जीवसरीरसंठाण सहेउअमिदि। जस्स कम्मक्खंधस्सुदएण सरीरस्संगोवंगणिफती होज्ज तस्स कम्म क्खंधस्स सरीरंगोवगं णाम (यदुदयादंगोपांगविवेकस्तदंगोपांगनाम। स. सि. त. रा. वा. ;त. श्लो . वा . ८ ११)। एदस्स कम्मस्साभावे अटठांगाणमुवंगाणं च अभावो होज्ज । ण चेवं , तहाणुवलंभा। एत्थुवउज्जंती गाहा ----

णलया बाहुअ तहा णियंब पुटठी उरो य सीसं च।

़अट्ठेव दु अंगाई देहण्णाइं उवंगाइं (गो . क. २८ परंतु तत्र चतुर्थ चरणे देहे सेसा उवंगाइं

इति पाठ :। ॥ १०॥

शिरसि तावदुपांगानि मर्ध्द करोटि - कस्तक -ललाट , शंख भ्र कर्ण - नासिका -नयनाक्षि कूट -हनु -कपोल उत्तराधरोष्ट सृक्वणी तालु - जिव्हादीनि। जस्स कम्मस्स उदएण सरीरे हडड -संधीण णिफती होज्ज , तस्स कम्मस्स संघडणमिदि सण्णा (यस्योदयादस्थिबन्धनविशेषी भवति तत्संहनननाम। स. सि. ;त रा. वा. त . श्लो वा . ८ ११)

एदस्स कम्मस्स अभावे सरीरमसंघडणं होज्ज देवसरीरं वा। हादु चे ण, तिरिक्ख -मणुससरीरेंसु हडड कलाउवलंभा।

असिध्द भी नही है, क्योंकी, घोडा, हाथी और हरिणोमें संस्थानका नियम -पाया जाता है। इसलिए यह सिध्द हुआ कि जीवके शरीरका संस्थान सहेतुक है।

जिस कर्म स्कन्ध केउदयसे शरीरके, अंग उपांगोकी, निष्पति होती है उस कर्म स्कन्धका शरीररोगोपांग यह नाम है। इस नमकर्म के नहीं माननेपर आठों अंगोंका और उपागोका अभाव हो जायगा। किन्तु ऐसा है नही, क्योंकी अंग और उपागोंका अभाव पाया नही जाता है। इस विषयमें यह उपयोगी गाथा है ---

शरीरमें दो पैर, दो हाथ, नितम्ब (कमरका पिछेका भाग), पीठ, हृदय और मस्तक, ये आठ अंग होते है। इनके सिवाय अन्य (नाक, कान, आंख इत्यादी) उपांग होते हैं ॥१०॥

शिरमें मुर्धा, कपाल, मस्तक, ललाट, शंखं भोंह, कान, नाक, आंख, अक्षिकूट, हनु, (ठुडडी)कपोल, ऊपर और नीचेके ओष्ठ, सृक्कणी (चाय), तालु और जीभ आदि उपांग होते है। जिस कर्म के उदयसे शरीरमुं हडडी और उसकी संधियों अर्थात संयोग -स्थानोंकी निप्पति होती है , उस कर्मकी सहंनन यह संज्ञा है। इस कर्म केअभाव मे ं शरीर देवोंके शरीरके समान संहनन -रहित हो जायगा।

शंका ----यदि सहंननकर्मके अभावमें शरीर देव शरीरके समान संहनन रहित होता है , तो होने दो क्या हानी है ?

समाधान --नहीं क्योंकी, तिर्यच और मनुष्यके शरीरोमें हाडोका समूह पाया जाता है।

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे णाम -उत्तरपयडीओ

जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे वण्णणिफची होदि तस्स कम्मक्खंधस्स वण्णसण्णा (यव्देतूको वर्णविभागस्तव्दर्णनाम । स . सि. त. रा. ८ ११) एदस्स कम्मस्स भावे अणियदवण्णं सरीरं होज्ज। ण च एवं , भमर कलयंठी हंस बलायदिसु णियदवण्णुवलंभा (सुणिवदवष्णुवलंभा मु ।) ण च णिरुहेउए णियमो होदि विरोहादो जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जादिंपडिणियदो (जादिपडिणियदो)गधों उप्पज्जदि तस्स कम्मक्खंधस्स गंधसण्ण , (यदुदयप्रभवो गंधस्तदगन्धनाम । स . सि. त . रा. वा. ८ ११ .)कारणे कज्जुवयारादो । जदि गंधणामकम्मं ण होज्ज तो जीवसरीरगंधो अणियदो होज्ज। होदु चे? ण, हत्थि -वग्घादिसु (ता हत्थिवत्थादिसु १-२।) णियदगंधुवलंभादो। जस्स कम्मक्खंधस उदएण जीवसरीरे जादिपडिण्यिदो तित्तादिरसो होज्ज तस्स कम्मक्ख्ंधस्स रससण्णा (यान्निामितो रसविकल्पस्तद्रसनाम । स.सि.त.रा.वा. ८, ११.) एदस्स कम्मस्स भावे जीवसरीरे जाइपडिणियदरसे ण होज्ज।

ण च एवं, णिंबंब-जंबीरादिसु णियदरुसस्सुवलंभादो । जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवरीरे जाइपडिणियदी फासी उप्पज्जदि तस्स कम्मक्खंधस्स फाससण्णा , (यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्श्नाम । स. सि. त. रा. वा. ८ ११)

जिस कर्म के उदयसे जीवके शरीर में वर्णकी उत्पत्ती होती है, उस कर्म स्कंन्ध की वर्ण संज्ञा है। इस कर्म के अभाव में अनियत वर्णवाला शरीर हो जाएगा। किन्तु एसा देखा नही जाता क्योंकी भौरा, कोइल, हंस और बगुंला आदिमें निश्चिी वर्ण पाये जाते है। परन्तु जो कार्य निर्हेतुक होता है, उसमे कोई नियम नही होता है, क्योंकी निर्हैतुक कार्य मे नियमके मानने‍का विरोध है। जिस कर्म स्कन्ध के उदयसे जीवके शरीरमें जातिके प्रति नियत गंध उत्पन्न होता है। उस कर्म स्कन्ध की गंध यह संज्ञा कारण मे कार्य के उपचपरसे की गई। यदि गन्धनामकर्म न हो, तो जीवके शरीरको गन्ध अनियत हो जोएगा।

शंका --यदि गंध नाम कर्म के अभाव मे जीवके शरीरकी गन्ध अनीयत होती है, तो होने दो, क्या हानी है?

समाधान ---नहीं , क्योंकी , हाथी और वाघ आदि मे नियत गपान्धई जाती है।

जिस कर्म स्कन्धके उदयसे जीवके शरीरमें जातिके प्रति नियत तिक्त आदि रस उत्पन्न हो, उस कर्म स्कन्धकी रस यह संज्ञा है। इस कर्म के अभावे में जीवक शरीरमे जाति प्रतिनियत रस नहीं होता। किन्तु ऐसा है नही, क्योंकी नीम, आम, और नीबु आदि में नियत रस पाया जाता है, उस कर्म स्कन्धकी कारण में कार्य के उपचारसे स्पर्श

छक्खंडागमे जीवटटाणं

कारण् कज्जुवयारादो। जदि पासणामकम्मं ण होज्ज ते । जीवसरीरमणियदपाासं होज्ज। ण च एवं , सपुफुफलकमलणालादिसू णियदफासुवलंभादो। पुव्वुत्तरसरीराणमंतरे एग _दो तिण्णि समए वट्ठमाण्जीवस्स जस्स कम्मस्स उदएण जीवपदताणं विसिट्ठो संठाण विसेसो होदि, तस्स आणुपहुव्वि ति सण्णा (पुर्वशरीराकाराविनाशे यस्योदयाद्रवति तदानुपूर्व्यनाम। स. सि. त. वा; त. श्लो . ८, ११.) संठाणणामकम्मादो संठाणं होदि त्ति आणुपुव्विपरियप्पणा णिरत्थिया ण्, तस्स सरीरगहिदपढमसमयादो उवरी अदय माग""माणस्स विग्गहकाले उदयाभावा (ननु "ा तन्निर्माणनामकर्मसाध्य फलं ना नानुपुर्व्यनामोदयकृतं? नैव दोष पुर्वायुरु"ह"दसमकाल एव पूर्वशरीरनिवृतो निर्माणनामोदयो निवृर्तते । तस्मिन्निवृत्तेष्टविधकर्म तैजसकार्मणशरीरसहंबंधिन आत्मन: उत्कर्षेण त्रख : समयाय्: ऋजुगतौ तु पूर्वशरीरएिकंरविनाशे सति उत्तरशरीरयोग्यपूदगलग्रहणान्निमार्णनामकर्मोदयव्यापार :। त. रा. वा. ८, ११.)

जदि आणुपुव्विकम्मं ण होज्ज तो विग्गहकाले आणियदसठाणो जीवो होज्ज। ण च एवं जादिपडिण्यिदसंठाणस्स तत्थुवलंभादो। पुव्व सरीरं "डिडय सरीरंतरमघे्तूण ठिदजीस्स इतिदगदिमणं कुदएिरें होदी ? ण तस्स तिण्हं सरीराणमुदएण विणा उदयाभावा।

यह सझां है। यदि स्पर्श नाम कर्म ना हो , तो जीवका शरीर अनियत स्पर्शवाला होगा। किन्तु ऐसा है नहीं , क्योंकि कमलकेस्वपुष्प ,फल और कमल नाल आदिमें नियत स्पर्श पया जाता है।

पूर्व और उत्तर शरीररोके आन्तरालवर्ती एक , दो औार तीन समय में वर्तमान जीवके जिस कर्म केउदय से जीव प्रदेशोंका विशीष्ट आकार - विशेष होतो है , उस कर्म की "आनुभूर्वी "यह संज्ञा है

शंका --संस्थानकर्मसे आकार विशेष होता है, इसलिए परिकल्पना निरर्थक है?

समाधान --नहीं, क्योंकी शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय से ऊपर उदयमे आनेवाले उस संस्थान नामकर्मका विग्रहगतिके कालमे उदय का अभाव पाया जाता है।

यदि आनुपुर्वी नामकर्म ना हो, तो विग्रहगतीके कालमें जीव अनियत संस्थानवाला हो जाएगा , किन्तु ऐसा है नही , क्योंकी जाति प्रतिनियती संस्थान विग्रह कालमे पाया जाता है।

शंका --पुर्व शरीर को छोडकर दुसरे शरीरको नहीं ग्रहणं करकेस्तित जीवका इति गतिमे गमन कीस कर्मसे होतो है ?

समाधान ---आनुपुर्वी नामकर्म से इति गतिमे गमन होता है।

शंका-- विहायोगति नामकर्मसे इत्छित गतिमे गमन क्यों नही होता है ?

समाधान --नहीं क्योंकि विहायोगति नामकर्मका औदारिकादि तीनों शरीरोके उद्रयके विना उदय नही होता है।

मूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे णाम -उत्तरपयडीओ

आणुपुव्वो संठाणम्हि वावदा कधं गमणहेऊति ण, तिरेस्स दोसु वि कज्जेसु वावारे विरोहाभवा। आत्तसरीरस्स जीवस्स विग्गहगईए उज्जुगईए वा जं गमणं तं कस्स फलं? ण, तस्स पुव्वखेत्तपरियाभावेण गमणाभावा ।

जीव पदेसाणं जो पसरो सो ण णिक्करणो, तस्स आउअसंतफलतादो। वण्ण-गंध रस-फासकम्माण् वण्ण -गंध रस फासा वि णिक्कारणा होंतु, वेसे.साभावा। एत्थ परिहारो उ""ादे --ण पढमे पक्खे उत्तदेसे, अणब्भुवगमादो । ण विदियपक्खदोसो वि, कालदळ्वं व दुस्सहावत्तादो एदेसिमुभयत्थ वावारविरोहाभावृ ।

शंका --आकार विशेषको बनाये रखनेमें व्यापार करनेवाली आनुपूर्वी इत्छित गतिमे गमनका कारण कैसे होती है ?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, आनुपूर्वीका दोनो भी कार्योके व्यापारमें विरोधका अभाव है अर्थात विग्रहगतिमे ँ आकार विशेषकिो बनाये रखना और इति गतिमे गमन कराना , ये दोनों ही आनुपूर्वी नामकर्मके कार्य है।

शंक -- पुर्व शरीर को न छोडते हए जीवके विग्रहगतिमें, अथवा ऋजुगतिमें जो गमन होता है, वह किस कर्म का फल है ?

समाधान--नहीं, क्योंकि पुर्व शरीर को नही छोडनेवाले उस जीवके पूर्व क्षेत्र के परित्याग के अभावसे गमन का अभाव है। पुर्व शरीर को नही छोडनेपर भी जीव प्रदेशोका जो प्रसार होता है वह निष्कारण नही है, क्योंकि वह आगामी भवसम्बन्धी आयुकर्मके सत्वका फल है।

शंका--वर्ण् गन्ध ,रस और स्पर्श सकारण होते है , या निष्कारण ।प्रथम पक्षमें अनवस्थ; दोष आता है। व्दितिय पक्षके माननेपर शेष नोमकर्मके वर्ण गन्ध, रस, और स्पर्श भी निष्कारण होना चाहीए, क्योंकि दोनो मे कोई भेद नही है ?

समाधान -- यहांपर उक्त शंकाका परिहार कहते है --प्रथम पक्षमें कहा गया अनवस्था दोष तो प्राप्त नही होता है, क्योंकी वैसा माना नहीं गया है । न व्दीतीय पक्षमें दिया गया दोष भी प्राप्त होता है, क्योंकी कालद्रव्यके समान व्दिस्वभावी होनेसे इन वर्णादिकके उभयत्र व्यापार करने में कोई विरोध नही है।

विशेषार्थ --जिस प्रकार कालद्रव्य अपने आपके परिवर्तन और अन्य द्रव्योके परिवर्तर्नका कारण होता है , उसी प्रकार वर्णदिक नामकर्म भी अपने वर्णादिकके तथा अपनेसे भिन्न परपुद्लोके वर्णादिकके कारण होते है। इसीलिए इनको कालद्रव्यके समान द्विस्वभावी कहा है।

अणंताणंतेहि पोग्गलेहि आऊरियस्स जीवस्स जेहि कम्मक्खंधेहिंतो अगुरअलहुअचं होदि, तेसिमगुरुअलहुअत्तं ति सण्णा (यस्योदयादय:पिण्डवद गुरुतवान्नाध: पतति न आर्क्तूलवल्लघुत्वादूर्ध्व गच्छंति । तदगुरुलघुनाम स. सि. ; त. रा. वा. ८.११.) कारणे कज्जुवयारादो। जदि अगुरुअलहुवकम्मं जीवस्स ण होज्ज , तो जीवो लोहगोलओ , व्व गरुअओ, अक्कतूलं व हलुओ वा होज्ज । ण च एवं, अणुवलंभादो। अणुरुवलहुअत्तं णाम जीवस्स साहावियमत्थि ? ण, संसारावत्थाए कम्मपरतंतम्मि तस्साभावा । ण च सहावविणासे जीवस्स विणासो, लक्खणविणासे लक्खंणविणासे लक्खणंविणासस्स णाइयत्तादो । ण च णाण_दंसणे मु जीवस्स अगुरुलहुअत्तं लक्खणं, तस्स आयासादीसु वि उवलंभा। किं"। ण एत्थ जीवस्स अगुरुअलहुत्तं कम्मेण कीरइ, कितु जीवम्हि भरिओ जो पोग्गलक्खंधो, सा जस्स कममस्स उदएण जीवस्स गरुओ अलुओ वा ति णावडइ तमगुरुवलहुअं। ते ण एत्थ जीवविसय अगुरुअलहुवतस्स गहणं।

आनन्तानन्त पुदगलोसे भरपूर जीवके जिन कर्म स्कंधोके व्दारा अगुरुलघुपना होता है, उन पुदगल स्कन्धोकी गुरुलघु यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचार से की गई है। यदि जीवके अगुरुलघुकर्म न हो , तो जीव लोहेके गोलेके समान भारी हो जायगा , अथवा आकके तूल (रुई) के समान हलका हो जायगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकी, वैसा पाया नही जाता है।

शंका --- अगुरुलघुत्व तो जीवका स्वाभाविक गुण है, (फिर उसे यहां कम्र कर्मप्रकृतियोंमें क्यों गिनाया) ?

समाधान --- नहीं , क्योंकि , संसार अवस्था में कर्म -परतंत्र जीवमे उस स्वभाविक अगुरुलघु गुणका अभाव है । यदि कहा जाय कि स्वभावका विनाश होनेपर जीवका विनाश, प्राप्त होता है , क्योंकी , लक्षणके विनाश होनेपर लक्ष्यका विनाश होता है , ऐसा न्याय है, सो भी यह बात नही है , अर्थात अगुरुलघुगुणके विनाश हो जाने पर भी जीवका विनाश नहीं होता है , क्योंकि ज्ञान और दर्शनको छोडकर अगुरुलघत्व जीवका लक्षण नही है ,
चूंकी वह आकाश आदि अन्य द्रव्योमे भी पाया जाता है। दुसरी बात यह है कि यहां जीवका अगुरुलघुत्व कर्मके व्दारा नहीं किया जाता है , किन्तु जीवमें भरा हूआ जो पुदगल स्कन्ध है,

जिस कर्मके उदयसे जीवके भारी या हलका प्राप्त नही होता है, वह अगुरूलघु कर्म यहां विवक्षित है। अतएव यहां पर जीव -विषयक अगुरुलघुत्वका ग्रहण नहीं करना चाहिए।

चूलियाए पगडिसमुक्कित्तणे णाम-उत्तरपयडीओ

उपेत्य घात उपघात : आत्मघात इत्यथ : (यस्योदयात्स्वयंकृतोदबंन्धनमरुत्प्रपतनादिनिमित उपघातो भवति उपघातो भवति तदुपघातनाम। स. सि. ; त. रा. वा. ;त. श्लो वा. ८. ११.) जं कम्म जीवपीडाहेउअवयवे कुणदि, जीवपीडाहेदुदव्वणि वा विसासि -पसादीणि जीवस्स ढोएदि (प्रतिषु दोएदि इति पाठ :।) तं उवघादं णाम। के जीवपीडकाकार्यवयवा इति "न्महाशृड.ग -लम्बस्तन ज्ञ्तुंदोदरादय :। जदि उवघादणामकम्मं जीवस्स ण होज्ज , तो सरीरादो वाद-पित्त सेंभदूसिदादो जीवस्स पीडा। ण होज्ज। ण च एवं, अणुवलंभदो। जीवस्स दुक्खुप्पायणे असादा वेदणीयस्स वावारोचे ? होदु तस्स तत्थ वावारो, किंतु उवघादकम्मं पि तस्स सहकारि - कारणं होदि , तदुदयणिमित्तपोग्गलदव्वसंपादणदो। परेषां घातः परघात। जस्स कम्मस्स उदएण परघादहेदू सरीरे पोग्गला णिफज्जंति तं कम्मं परघादं णाम (यन्निमित्त : परशस्त्रादेव्यघिातस्तत्परघातनाम। स सि; त रा वा; श्लो वा ८, ११.) तं जहा -- सप्पदाढासु (प्रतिषु दादासु इति पाठ :।) विस , विच्छियपुंछे परदु:खहेउपोग्गलोव"।ओ, सीहवग्घचवलादिसु णह दंता , सिंगिवच्छणाधित्तुरादओच परघादुप्पायया।

स्वंय प्राप्त होनेवाले घातके उपघात अर्थात आत्मघात कहते है ं। जो कर्म अवयवोंको जीवकी पीडाका कारण बना देता है , अथवा जीवपीडाकेकारणस्वरहुप विष, खडग , पाश आदि द्रव्योको जीवकेलिए ढोता है, अर्थात लाकर संयूक्त करता है , वह उपघात नामकर्म कहलाता है

शंका -- जीवको पीडा करनेवाले अवयव कौन कौन है ?

समाधान -- महाशृंग (बारह सिंगाकेसमान बडे सींग) , लम्बे स्तन, विशाल तोदवाला पेट आदि जीवको पीडा करनेवाले अवयव हैं। यदि उपघात नामकर्म जीवको न हो , तो बात, पित्त और कफसे दूषित शरीरसे जीवकेपीडा नही होना चाहिए । किन्तु ऐसा है नहीं ,क्योंकि वैसा नही पाया जाता है।

शंका ---जीवकें दु:ख उत्पन्न करने मे असातावेदनीयकर्मका व्यापार रहा आवे , किन्तु उपघपातकर्म भी उस असातावेदनीयका सहकारी करण होता है , क्योंकिउसके उदयकेनिमित्तसे दु:ख कर पुदगल द्रव्यका सम्पादन (समागम) होता है। पर जीवोके घातको परघात कहते है। जिस कर्म के उदयसे शरीरमें परको घात करनेके कारणभुहत पुदगल निष्पन्न होते है, वह परघात नामकर्म कहलाता है। जैसे सांपकी दाढोमें विष , विच्छुकी पूंछमें पर -दु:ख केकारणभुत पुदगलोंका संचय, सिह, ब्याघ्र और छल्ल (शबल-चीता)
आदिमें (तीक्ष्ण) नख और दन्त, तथा सिंगी , वत्स्यनाभि और धत्तुरा आदि विषैले वृक्ष परको दु:ख उत्पन्न करनेवाले है।

छक्ख्ंडागमे जीवट्ठाणं

उच्छवसनमुच्छवास : जस्स कम्मस्स उदएण जीवो उस्सास-णिस्सासकज्जु प्पायणक्खमो होदि तस्स कम्मस्स उस्सासो ति सण्णा (यध्देतुरुच्छवासस्तदु""वासनाम।स . सि. त. रा. वा. त. श्लो. वा. ८,११.) कारणे कज्जुवयारादो - जदि स्ससणामकम्मं ण होज्ज, तो जीवो अणुस्सासो होज्ज। ण एवं, उस्सास- विरहिदजीवाणुवलंभा । आतपनमातप: जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे आदओ होंज्ज , तस्स कम्मस्स आदओ त्ति सण्णा । (यदुदयान्निर्वत्तमातपनं तदएिएपंनाम । तदादि ये वर्त्ते स. सि . त . रा. वा ; त . श्लो . वा. ८. ११.) जदि आदवणामकम्मं ण होज्ज, तो
सूरमंडले पुढविक्काइयसरीरे आदवाभवो होज्ज। ण च एवं, तहाणुवलंभा। को आदवो णाम ? सोष्ण: प्रकाश: आतप:। एवं संते तेउक्कायम्मि वि आदावस्स उदओ पावेदि त्तिचे ? ण, तत्थतणउण्हपभाए तेउक्काइयणामकम्मोदएणुप्पण्णाए सयलपहाविणाभावि उण्हत्ताभावेण साधमाभावादो।उद्योतनमुद्योत:। जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे उज्जोओ उप्पज्जदि तं कम्म उज्जोवं णाम (यन्निमित्तमुद्योतनं तदुद्योतनाम तच्चन्दशद्योतादिषु वर्ततें। स . सि . ; त. रा. वा.;त. श्लों . वा. ८.११.) जदि उज्जो वणामकम्मं ण होज्ज , तो चंद -णक्खत तारा - खज्जोतादिसु सरीराणमुज्जोवो ण होज्ज
। णच एवमणहुवलंभा।

सांस लेनेको उच्छवास कहते हैं। जिस कर्म केउदयसे जीव उच्छवास और नि:श्वासरुप

कार्यके उत्पादनोमे समर्थ होता है , उस कर्म की उच्छवास यह सज्ञा कारण में कार्यके उपचारसे है। यदि उच्छवास नामकर्म न हो, तो जीव श्वास रहित हो जाय। किन्तु ऐसा है नहीं , क्योंकि संसारमे उच्छवासे रहित जीव पायें नही जाते। खुब तपनेको आतप कहते है। जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें आतप होता है , उस कर्म की आतप यह संज्ञा है। यदि आतपनामकर्म न हो, तो पृथिवीकायिक जीवोके शरीररुप सूर्य -मंडलमें आतपका आभाव हो जाय । किन्तुं ऐसा है नही , क्योंकि , वैसा पाया नहीं जाता ।

शंका --आतप नाम किसका है ?

समाधान --उष्णता-सहित प्रकाशके आतप कहते है।

शंका-- इस प्रकार आतप का अर्थ करनेपर तेजस्कायिक जीवमें भी आतप कर्मका उदय प्राप्त होता है ?

समाधान --नहीं क्योंकी, तेजस्कायीक नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई उस अग्निकी उष्णप्रभामें सकल प्रभावोकी अविनाभावी उष्णताका अभाव होनेसे उसका आतपके साथ समानताका अभाव है।

उद्योतन अर्थात चमकनेको उद्योत कहते है। जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें उद्योत उत्पन्न होता है वह उद्योत नामकर्म है। यदि उद्योत नामकर्म न हो , तो चन्द्र , नक्षत्र तारा और खद्योत (जुगुनू नामक कीडा) आदिमें शरीरोकें उद्योत (प्रकाश) न होवेगा। किन्तु ऐसा है नही, क्योंकि वैसा पाया नही जाता ।

चूलियाएपगडिसमुक्कित्तणे णाम -उत्तरपयडीओ

विहाय आकाशमित्यर्थः विहायसि गति : (विहाय आकाशन।तब गतिनिर्वर्तक तव्दिहायोगतिनाम। स. सि.;त. रा . वा.; त. श्लो . वा. ८.११.)। जेसी कम्मक्खंधाण मुदएण जीवस्स आगासे गमण होदि तेसि विहायगदि त्ति सण्णा । तिरिक्ख -मणुसाणं भुमीए गमणं कस्स कम्मस्स उदएण ? विहायगदिणामस्स। कुदो। विहत्थिमेत्तपपयजीवपदेसेहि भुमिमोट्ठहिय सयलजीवपएसाणमायासे गमणुवलंभा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं तसत्तं होदि, तस्सं होदि ,तो बीइंदियादीणमभावी (प्रतिषु बीइंदियाण्मभवो इति पाठः) होज्ज । ण च एवं, तेसिमुवलंभा । जस्स कम्मस्स उदएण

जीवो थावरतं पडिवज्जदि तस्स कम्मस्स थावरसण्णा (यान्निमित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावरनाम। स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लो . वा. ८. ११.)

जदि थावरणामकम्मं ण होज्ज, तो थावरजीवाणमभावो होज्ज । ण च एवं, तेसिमुवलंभा । जस्स कम्मस्स उदएण जीवो बादरेसहु उप्पजदि तस्स कम्मस्स बादरमिदि सण्णा (अन्यबाधाकरशरीरकारणं बादरनाम । स. सि.; त. रा. वा.; त. श्लों. वा. ८, ११.) जदि बादरणाम-कम्मं ण होज्ज, तो बादराएणमभावो होज्ज । ण च एवं, पश्रिडहयसरीरजीवाणं पि उवलंभदो।

विहायस नाम आकाशका है। आकाशमे गमनको विहायोगति कहते है। जिन कर्मस्कन्धोके उदयसे जीवका आकाशमे गमन होता हैं , उनकी विहायोगति यह संज्ञा हैं। शंका --तिर्यंच और मनुष्योका भूमीपर गमन कीस कर्मसे उदयसे होता है ?

समाधान --विहायोगति नामकर्मके उदयसे क्योंकी , विहस्तिमात्र (बारह अंगुलप्रमाण) पाववाले जीव-प्रदेशोंके व्दारा भुमिको व्याप्त करके समस्त प्रदेशोंका आकाशमें गमन पाया जाता है।

जिस कर्म के उदयसे जीवोकें त्रसपना होता है , उस कर्मकी त्रस यह संज्ञा कारणमें कार्यके उपचारसे है । यदि त्रसनामकर्म न हो , तो व्दीन्द्रिय आदि जीवोंका अभावा हो जायगा ।

किंन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकी, व्दीन्द्रिय आदि जीवोंका सव्दाव पाया जाता है। जिस कर्मके उदयसे जीव स्थावरपने को प्राप्त होता है, उस कर्मकी स्थावर यह संज्ञा है। यदि स्थावर नामकर्म न हो, तो स्थावर जीवोंका अभाव हो जायगा । किंन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकी स्थावर जीवांका सद्‌भाव पाया जाता है। जिस कर्मके उदय से जीव बादरकायवालोंमें उत्पन्न होता है, उस कर्मकी बादर यह संज्ञा है। यदि बादरनामकर्म न हो, तो बादर जींवोंका अभाव हो जायेगा । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकी, प्रतिघाती शरीरवाले जीवोकी भी उपलब्धि होंती है।